तलाश मंजिल की


तलाश
मंजिल
की
विनोद प्रवासी

दो शब्द

बन्द अंधेरे कमरे में बैठने पर भी मन की दृष्टि दूर अज्ञात अनजान क्षितिज की ओर भटकती है। जिन्दगी कहां से शुरू की, कहां-कहां पड़ाव डाले और कितना सफर बाकी है इसका हिसाब-किताब अवकाश के क्षणों में चलता है। अवकाश के क्षण जीवन में हैं कितने ? एक न्यायाधीश का व्यस्त-जीवन, हर रोज टेबिल पर नई मोटी फाईल, नये कथन, नये तर्क, नये निर्णय। इसी क्रम में नये व्यक्ति और नये अनुभव......। इस आपा-धापी से समय चुराने की कला मैंने सीख ली है। जितना समय शेष मिलता है उसमें ईमानदारी से लिखता हूं।

मध्यप्रदेश की धरती का अहसान नहीं भूलूंगा। जब बिल्कुल थककर टूटने लगता हूं तो इस सुन्दर धरती पर फैले विशाल मनमोहक जंगलों की शरण में चला जाता हूं। सागर से ४० किलोमीटर दूर स्थित धामोनी के जंगल और धामोनी के मजार का आकर्षण मेरे लिये सदा रहस्यमय रहा है। उसी के मोहपाश में बंधकर कुछ पात्र बुनने के स्वप्न का परिणाम यह उपन्यास है।

कथा के प्रवाह को, पात्रों की मनोवैज्ञानिकता को रंग रूप देने के प्रयास में अनजाने में एक काल-संदर्भ अनायास जुड़ गया है। कथा में आई राजनैतिक प्रतिच्छाया का ध्येय केवल प्रशान्त के चरित्र के निर्माण का आकस्मिक माध्यम है। मेरा उद्देश्य परिवेश को उभारना रहा है ताकि इस धरती का कर्ज उतार सकूं। सागर की धरती पर 'शिला सीमान्त में आगे' के क्रम में यह मेरा दूसरा उपन्यास है।

—विनोद 'प्रवासी'

"साक्षी है आकाश तुम्हारे प्यार का
दर्द तुम्हारा एक निशानी बन गया,
मैंने जो कुछ दिया, भूल तुम तो गये
तुमने जो कुछ दिया कहानी बन गया"

१

"बहुत सरदी है पारो! लगता है, रात-भर में मारे ठंड के अकड़कर खतम हो जाएंगे।" सगर ने दांत किटकिटाते हुए कहा।

"तू तो खूब कांप रहा है रे···ऐसा कर, दोनों चादरें मिला लेते हैं—हम दोनों एक साथ सोएंगे तो सर्दी कुछ कम लगेगी।" पारो ने सगर की स्वीकृति की प्रतीक्षा नहीं की। मां मर गई तो क्या हुआ, वह बड़ी बहिन है—सगर के लिए मां-बाप सभी कुछ इस संसार में वही है। उसने अपना फटा-पुराना चादरा उतारा और सगर के चादरे पर डालकर स्वयं भी उसीमें दुबक गई। सगर के शरीर का स्पर्श पाते ही उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह ज्वर में तप रहा था। वह चौंक उठी—सगर कांपे जा रहा था। बाहर बारिश थमने का नाम नहीं ले रही थी। जाड़े की रात, माहट का पानी और बर्फीली हवाएं। टूटा-फूटा खण्डहरनुमा मजार, लम्बा-चौड़ा एक तरफ से खुला बरामदा। घटाटोप अंधकार में दोनों बहिन-भाई भोर की प्रतीक्षा में सुकड़े पड़े थे। बिजली की चमक से दोनों का दिल दहल जाता था। पारो का मन हर बार छिटककर गांव की ओर भागता था।

विधवा मां, पारो और सगर—यही छोटा-सा परिवार था। मां गांव के दो घरों में रोटी बनाती थी। महाराजिन ने दोनों बच्चों को बचपन से मेहनत-मजदूरी करके पाला था। खानदानी आठ बीघा भूमि उसके देवर श्रीराम के कब्जे में थी। फसल के समय एक-दो बोरा गेहूं खैरात के रूप में महाराजिन को मिल जाता था। मां के साए में दोनों बच्चे सुखी थे। पारो ने सावन में सोलह वर्ष पूरे कर

अगले बरस ही महाराजिन उसका ब्याह कर देना चाहती थी। सगर उनसे एक वर्ष छोटा था बस। दो-चार बरस में कुछ कमाने योग्य हो जाएगा तो घर की हालत सुधर जाएगी। पारो को अपने मन की बात बतलाती हुई महाराजिन दालान की देहरी पर बैठी सूपा में चावल फटक रही थी। खूब काले बादल घिरे थे। बार-बार बिजली कड़क रही थी—बादल गरज रहे थे। पारो नहानी के पास बासन मांज रही थी। सहसा ही मूसलाधार बारिश शुरू हो गई। सगर बाहर पीपल के नीचे बच्चों के साथ गुल्ली-डंडा खेल रहा था। वह भागता हुआ आया। पारो बर्तन-भांड़े उठाकर रसोई की ओर भागी। बिजली पुनः कड़की और भयंकर चकाचौंध के साथ जोरदार धमाका हुआ। पारो को लगा कहीं पास में ही बिजली गिरी है। पलक झपकाते ही मां की चीख और दहलान के छप्पर के गिरने की आवाज सुनाई दी। उसकी अन्तरात्मा कांप उठी। सगर मारे भय के चीखने लगा और उससे लिपट गया—मां सड़े हुए बांसों के टूटे छप्पर के नीचे दबी पड़ी थी। पारो ने गाज गिरने की कहावत सुनी थी। आज उसने स्वयं अपनी आंखों से देखा था। मां का शरीर नीला-स्याह और काला पड़ गया। खाल की ऊपर वाली परत उधड़ गई थी। पारो और सगर फिर अनाथ हो गए। काका के हृदय में भौजाई का जो भय था वह भी समाप्त हो गया। तेरहवीं की रस्म होते-होते मकान पर भी उनका कब्जा हो गया। पारो को काका की बातों से लगा कि दो-चार दिन में वह उसे भी कहीं ठिकाने लगाकर दाम सीधे करेंगे। आन गांव से कोई विधुर ठाकुर आया था। उसने काका के साथ दारू पी थी और बुक्का फाड़-फाड़कर कहा था—"बम्मन की बेटी है तो क्या हुआ, ठाकुर के घर जाएगी तो ठकुराइन कहलाएगी, हम खानदानी लोग हैं···।" फिर काका की फुसफुसाहट और ठाकुर का स्वर—"हां मंजूर है—पांच सौ रुपये और ऊपर, मेरी तरफ से।"

फिर काका का बुझा-बुझा स्वर—"ठाकुर साहब, विनती यह है कि किसीको कानोंकान खबर न हो कि लड़की मैंने आपके यहां भेजी है। बिरादरी से डाल देंगे और तूफान खड़ा हो जाएगा।"

ठाकुर ने आश्वासन दिया—"पंडित जी, सालों तक तो किसीको

यह भी पता नहीं चलेगा कि लड़की गई कहां।"

पारो को लगा कि सौदा पूरी तरह से पट गया है। उसे इस नरक में ढकेल दिया तो सगर का क्या होगा? आधी रात गए उसने सगर को उठाया। उसे समझाया कि काका उसे बेच देंगे तो वह अकेला रह जाएगा। चलो भाग चलें। उसी रात एक अनाज के खाली बोरे में पहनने-ओढ़ने के दो-चार कपड़े लेकर वह लोग भाग खड़े हुए। सारी रात बदहवासी में भागे। सुबह जंगली पोखर पर मुंह-हाथ धोया…पास के खेत से चना-बूंट उखाड़े और जंगल से झरबिरिया के बेर तोड़कर कलेऊ किया।

कितने डरे-सहमे थे वह दोनों, लेकिन इसके बावजूद कैद से छुटकारा पाने की खुशी अजीब थी। ओसकणों से लदी करौंदे की झाड़िया लाल-लाल मुरम वाली कंकरीली धरती पर उगा पलाश वन और उनके बीच मुस्कराती हुई झरबिरिया की झाड़िया…वह लोग एक जगली नाले के किनारे पहुंच गए थे। तभी पारो ने एक काली भारी भरकम आकृति को झाड़ियों में घुसते देखा। उसे समझने देर न लगी कि जंगली सुअर उन्हें देखकर झाड़ी में घुस गया था। उसने सगर से कुछ भी न कहा लेकिन मन को अनचीन्हे भय ने झकझोर डाला। उसने बेरी के कांटों को बचाकर एक डाल झुकाई और तब तक उससे झूमा-झटकी करती रही जब तक वह टूट न गई। पत्थर से कांटों को कुचला और एक अच्छा-खासा डंडा बना लिया। उसके सिरे पर बोरे वाली पोटली लटकाकर वह उसे कंधे पर टिकाकर निसफिकर होकर चलने लगी। दोनों भाई-बहिन किसी अनदेखी अनजानी मंजिल की ओर बढ़ते रहे। पारो को गांव वाली रामलीला के विदूषक का गीत सहसा ही याद आया और वह उसे धुन में अलाप भरकर गाने लगी :

"जतन से राखियो बाबा को झोरी झंगा
नई बेरी के बेर झुराए, बई को टोरो डंडा
जतन से राखियो बाबा को झोरी झंगा।"

सगर के बदन की कंपकंपाहट ने उसकी तन्द्रा तोड़ दी—"बहुत ठंड है।"

पारो ने कहा—"कुछ खाने को भी तो नहीं है। खाली पेट ठंड लगती है।" फिर वह सोचने लगी—क्या इलाज है इसका ? उसे एक तरकीब सूझी। बोरे में जितने कपड़े थे उसने निकालकर सागर को पहना दिए। अपनी पुरानी धोती उसपर लपेट दी और खाली बोरा गिलाफ की तरह सागर पर चढ़ाकर स्वयं भी उसके पास ही लुढ़क गई। दोनों चादरें गले और कान से लपेटने के बाद भाई-बहिन को कुछ गरमाहट मिली। बोरे में सिमटा-सुकड़ा दिनभर की थकान से टूटा सागर सो गया।

सुबह होने तक आसमान साफ हो गया।

बूढ़ी अम्मा वर्षों के नियम-संयमों से जकड़ी सूरज की पहली किरण के साथ बुहारी लेकर बाबा की मजार पर आ गई। बाबा की शान में कुछ-कुछ गुनगुनाते हुए उसने झाड़ू-बुहारी पूरी की। मजार से निकल-कर वह बरामदे की ओर बढ़ी तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही। सूरज की किरणें बरामदे में भर रही थीं। स्वर्णिम झिलमिलाते प्रकाश में उसने एक भरा हुआ बोरा पड़ा देखा। पास गई तो उसे लगा उसमें कोई आदमी का बच्चा भरा था। उसके सिर के बाल बाहर निकले दिख रहे थे। अम्मा की आत्मा कांप उठी किसी आशंका से—'हाय अल्ला, कोई लाश तो नहीं बोरे में भरकर फेंक गया है।' वह झुककर बोरे के पास बैठ गई। उसने साहस बटोरकर थोड़ा-सा बोरा सरकाया।

शान्त सरोवर के खिले कमल के पुष्प-सा भोर की किरणों में जग-मगाता मुखमंडल। सागर का चम्पई रंग, माथे पर उलझे हुए बाल, बोझिल-बोझिल पलकों के नीचे कितनी सुन्दर आंखें होंगी, अम्मा को समझते देर न लगी। गहरी निःश्वास छोड़ती नासिका और उसके नीचे कोमल फड़कते हुए अधर। अम्मा को लगा—यह तो किसी अच्छे घर-खानदान का बच्चा है। शायद देर से सोया हो—उसे न जगाया जाए। लेकिन जिज्ञासाओं के पर्वत शीश उठाने लगे। उस अबोध अनाथ बालक से बात करने को अम्मा लालायित हो उठी। उसने बालक के सिर को

सहलाकर धीमे-धीमे उसे थपकी देना प्रारम्भ किया। सगर स्नेहिल स्पर्श से जाग पड़ा। अनायास ही उस अपरिचिता वृद्धा को सम्मुख पाकर उसके मुख से निकला—"अम्मा तुम कौन हो ?" पारो का विचार आते ही उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना अपने बगल में पड़ी पारो को सगर ढूंढने लगा। पारो वहां नहीं थी।

"क्या है, क्या ढूंढ रहा है ?" अम्मा ने उत्सुकतावश पूछा।

"अम्मा मेरी बहिन थी मेरे साथ। रात उसने ही मुझे यहां सुलाया था।"

अम्मा एक बार फिर से चौंकी। तेरी बहिन भी थी ? स्यात जगल-झारे को गई हो। मैं देखत हो," सगर के माथे पर हाथ फेरते हुए कहा—"तू तो जूड़ी से तप रहा है, तू रुक, मैं आत हों।"

जंगली फल, बेर मकोरे, सीताफल और बिही लादे हुए पारो सामने से चली आ रही थी। अम्मा रास्ते में ही टकरा गई। सगर ने अम्मा को पारो का हाथ पकड़कर आते हुए देखा। अम्मा ने इत्मीनान से बैठकर पारो का घर-पता पूछना शुरू किया। अम्मा का स्नेह देखकर उसने रोते-रोते संक्षेप में अपनी कहानी सुना डाली।

अम्मा की आंखों से झर-झर आंसू ढुलक चले।

फिर पारो को समझाते हुए बोली—'मेरी सारी उम्र इसी दरगाह में बाबा की खिदमत में गुजरी है। यहीं रोज लोभान जलाती हूं, चिराग जलाती हूं, मजार की साफ-सफ़ईयत करती हूं। बगल में एक झोंपड़ा डाल रखा है। लोग दूर-दूर से आकर मुराद मांगते हैं। यहीं जो धेला-टका मिलता है उससे इस घनघोर जंगल में गुजर-बसर करती हूं। तुम लोग तो खुद-ब-खुद नहीं आए हो—मालिक ने तुम्हें यहां बुलाया है, अपनी छत के नीचे पनाह दी है। तुम लोग चाहो तो यहीं मेरे पास रहो—जो रूखा-सूखा हो, मेरे साथ खाओ।"

"अम्मा, भैया का बुखार उतर जाए—मैं इसे सागर ले जाऊंगी। हम मेहनत-मजूरी करेंगे। भैया को पढ़ाऊंगी, मैं भी पढ़ूंगी। मैंने मन में कुछ ठान रखी है, उसे पूरा करूंगी।"

अम्मा उस अबोध बालिका का अदम्य साहस और पढ़ाई की ओर

कर चौंक उठी। उसने उस बालिका के उन्नत ललाट ... फूली कांस की आभा
ओं में सुबह की धूप में झिलमिलाती हुई फूली कांस की आभा
अम्मा ने कहा—"बाबा तेरे मन की मुराद पूरी करेंगे। तू कोई
लड़की नहीं है—एक दिन तेरा इकबाल जरूर बुलन्द होगा।
बा से और परवरदिगार से तेरे लिए दुआ करती रहूंगी। लेकिन
रुक जा। मैं बच्चे को जंगल की जड़ी-बूटी बकरी के दूध में
ऊंगी। इसका बुखार उतर जाएगा। रात-भर रुक जा, सुबह होते
चली जाना। देख यह सामने ही धामोनी तिगड्डा है, दाहिने को
एगी तो बरोदिया छः कोस पड़ेगा। वहां से सीधी मोटरगाड़ी मिलेगी
हर के लिए। लेकिन वह रास्ता लम्बा है सीधी निगती जाएगी तो
महरोल पांच-छः कोस पड़ेगा, वहां से फिर मोटर से सागर पास है।"

"लेकिन अम्मा मेरे पास तो मोटर का किराया भी नहीं है।
थोड़े-से पैसे हैं उन्हें दो-तीन दिन के रोटी-पानी को दबाए हूं।"

"मैं दूंगी मोटर किराया, मुझे खैरात मिलती रहती है। तू रुक,
मैं फूटे किले से बूटी तोड़ लाऊं भैया की दवाई के लिए।" और अम्मा
बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए चली गई।

पारो ने सगर के माथे पर दुलार से हाथ फेरकर पूछा—"कैसा
जी हो रहा है रे?"

"अब कुछ जाड़ा कम हुआ है।"

"घाम में बड़ी गर्मी है।"

घाम के लालच में सगर बोरे से बाहर निकल आया। चादरें बदन
पर लपेटता हुआ बोरे पर बैठ गया। सोचा पारो से कहे—'बड़ी भूख
लगी है लेकिन इस जंगल में वह क्या खाना दे पाएगी उसे? उसका मन
और दुखेगा। पारो ने उसके मन की बात समझ ली। सोचा, बा...
करना व्यर्थ है। अम्मा से ही कुछ जुगाड़ भिड़ाई जाए।

सगर ने चारों ओर देखते हुए कहा—"पारो, यह कौनसी ज...
है?"

"किसी फकीर की दरगाह है।"

"दरगाह क्या होती है?"

"अरे जैसे अपने गाँव में कठना वाले खेत के पास पीपल के तरे पीर बाबा का चबूतरा था। तुझे याद है अपनी बाई के गांव में सावन में हम गए थे ? एक साधू महात्मा स्वर्ग सिधार गए थे। गाव वालों ने उनका चौतरा बनाया था उनके स्थान पर। बस ऐसे ही मुसलमानों के किसी पहुंचे हुए फकीर का स्थान है यह।" पारो मजार के दर्शन को चली गई।

सगर का मन अपनी बाई के गांव के आसपास भटकने लगा। सागर बाई के साथ नानी के घर जाता था। किरमा वाले ताल में खूब डुबारें लगाता था। अमराइयों में दिनभर भटकता, कच्ची-पक्की गाव खाता और ढोर चराने वाले बच्चों के साथ लकुटिया लेकर दूर-दूर तक हारों में घूमता। सब कुछ याद आने लगता है। अब क्या कभी गाव वापस जा सकेगा ? पारो उसे नानी के घर क्यों नहीं ले गई ? नानी मर गई तो क्या, मामा तो हैं, गाय बैल हैं, घर के खेत हैं। वह भी तो खेती कर सकता है। अभी ढोर चरा सकता है।—कहां ले जारी है उसे पटकने को ? शहर कैसा होना होगा···? सगर का दिमाग घूमता रहा। वह उठ खड़ा हुआ और दहलान के बाहर की ओर बढ़ा। उसने देखा, सामने अम्मा टपरा तरे बकरी लगा रही थी। बकरी का कच्चा दूध ··अरे बाप रे ! कित्ता पसन्द था उसे ! घास-फूस से छाया गया टपरा इस अम्मा ने इतने घनघोर जंगल में क्यों बनाया ? इसे जानवर नहीं खाते ? पीछे की पदचापों से वह चौंका। पारो आ गई थी। बिना कुछ कहे उसका हाथ थामा और उसे टपरा की ओर ले गई। अम्मा ने ऊपर से लेकर नीचे तक सगर को देखा। उसका सुडौल शरीर देखकर मुस्कुरा दी। अम्मा झट से अन्दर गई। बूटी को उसने पीसकर रखा था। उसकी दो गोलियां बनाईं।—"आ, दूध के साथ दवाई खा ले, जंगली बूटी है, बुखार छू मन्तर हो जाएगा।"

"मैं कच्चा दूध पिऊंगा।" सगर ने सहमते हुए कहा।

"ठीक है, कच्चा ही पीना होगा, मोटूगी कहां से, अभी तो तश्तरी बीनती है···" अम्मा ने कहा।

अम्मा ने सिलवर के टीननुमा गिलास में सगर को दूध

पहले गोली गुटका दी फिर दूध पिला दिया। पारो को उसी गिलास में दूध देकर बाकी दूध एक बड़े फूटे कटोरे को टेढ़ा करके डाला और दो बार में उस दूध को गटक गई। फिर बोली—"बेटा, तू धूप में लेट, मैं अभी लकड़ी बीनकर लाती हूं, तभी तो रोटी कर पाऊंगी।"

पारो बोली—"मैं भी तेरे साथ चलती हूं। आगे करौंदे की झाड़ियां हैं, करौंदे की चटनी बांटूंगी।"

अम्मा ने कहा—"वो कुल्हाड़ियां उठा ले, एक ठूकड़ा गुंगरा बहुत दिक्कत करता है कभी-कभी, जानता है, बूढ़ी हूं सो खूब डिटाई देता है।"

टपरे के छप्पर से पारो ने कुल्हाड़ी खींचकर निकाल ली और अम्मा के पीछे चल दी। सगर पुआर पर चादरा ओढ़कर लेट गया। बूटी के प्रभाव से उसके रक्त का प्रवाह बढ़ गया। माथे पर स्वेद-कण उभरने लगे। उसे गरमाहट अच्छी लगी। एक अजब-सी खुमारी उसकी पलकों को बोझिल करती चली गई। पता नहीं कब उसे नींद आ गई।

अम्मा सिर पर लकड़ी का गट्ठा लादकर टपरे की ओर चल दी। पीछे-पीछे फुदकती हुई पारो···आंचर मे करौंदे और झरबिरिया के बेर भरे, हरी कच्ची इमली चबाती हुई। अम्मा ने उसे सूखी-सूखी लकड़ियों पर कुल्हाड़ी चलाते हुए देखा था। उसकी बांहों में बल था। उसके मन में आज भी उत्साह था। मंजिल का ठिकाना नहीं, घर का पता नहीं, अपना कहने को छोटा भाई और सामने पहाड़-सी जिन्दगानी। जंगल से ज्यादा डरावने शहर और जंगली जानवरों से ज्यादा खतरनाक वहां का आदमी। क्या होगा इन अबोध बच्चों का? मन ही मन घबराकर उसने कहा—"बिन्नू, सागर जाकर क्या करोगी? कहां रहोगी? वहां कैसे गुजर-बसर करोगी? मैं सोच-सोचकर घबरा रही हूं।"

"अम्मा, तुम्हारा बोझ बनकर नहीं रहूंगी। भगवान हमारे साथ हैं, बस यही विश्वास रक्षा करेगा।"

इतनी कम उम्र में ऐसी गजब की अक्ल? इसके मां-बाप साधारण व्यक्ति नहीं होंगे! अम्मा इन्हीं ख्यालों में डूबी-डूबी मटेलनी से

ज्वार का आटा निकालने लगी। जितना आटा था उसने सभी कोपर में डाल लिया और पानी डालकर उसे माड़ने लगी।

पारो से रहा न गया तो उसने कह डाला—"अम्मा, आटा भीत है।"

"अरी बिन्नू, एक जोर ही तो बनाती हूं। अंधक को भी यही रोटी खानी होगी। भुंसारे तुम लोग जाओगे तो क्या चार रोटी भी तुम्हारे साथ न बाधूंगी ?"

अम्मा आटा मांड़ती रही। पारो के मस्तिष्क में मां के चित्र उभरने लगे। ऐसे ही आटा मलते-मलते मां उसे वेद-पुराणों की कहानियां सुनाती थीं। दुनिया-भर की सदाचार और ज्ञान की बातें बतलाती थीं। पारो के नाना कथावाचक पंडित थे। पारो के पिता गांव के ही स्कूल में मास्टर थे। मां को धार्मिक पोथियां बांचने का शौक था। उसे ढेर सारी पौराणिक गाथाएं कंठस्थ थीं। पारो के पिता की आकस्मिक मृत्यु पर धार्मिक संस्कारों ने उन्हें टूटने नहीं दिया, उन्होंने कभी भिक्षावृत्ति नहीं अपनाई। काका ने धोखेबाजी की। मां ने उसे प्रभु इच्छा मानकर स्वीकार कर लिया। कितना परिश्रम करती थी और बच्चों को लाड़-प्यार से पालती थी। पारो में शायद वही संस्कार जागे थे और सब कुछ पीछे छूट जाने पर भी वह एक अनजान डगर पर नये संकल्पों के साथ बढ़ रही थी। उसे ईश्वर में घोर आस्था थी।

अम्मा आटा माड़कर पीछे तलैया में सपरने चली गई। पारो ने उठकर चौके का उद्धार करने की ठान ली।

वह अन्दर टपरे में घुसी तो पुनः एक बार चौंकी। मैली पुरानी हजार थेगरा सिलकर बनाई गई कथरी ओढ़ने के नाम पर। दो फटे पुराने बोरे अम्मा का बिछौना। चूल्हा काला स्याह, चौका मुद्दत से बिना लिपा-पुता। चूल्हे में भरी हफ्तों की राख। दो डबुलियां मिट्टी की—एक में नमक तथा दूसरे में राई। छप्पर से लटकती एक बोतल में लगभग आधा, जलाने वाला घासलेट। दूसरी बोतल पर इतनी गर्द चढ़ी हुई है कि समझ में नहीं आता अंदर क्या है—उसे लगा इसमें चिकनाई है। एक मटेलनी में ज्वार एक कुरईया से कम—दाल, चावल

ोली गुटका दीं फिर दूध पिला दिया । पारो को उसी गिलास में
कर बाकी दूध एक बड़े फूटे कटोरे को टेढ़ा करके डाला और दो
में उस दूध को गटक गई । फिर बोली—"बेटा, तू धूप में लेट, मैं
लकड़ी बीनकर लाती हूं, तभी तो रोटी कर पाऊंगी ।"

पारो बोली—"मैं भी तेरे साथ चलती हूं । आगे करौंदे की झाड़ियां
करौंदे की चटनी बांटूंगी ।"

अम्मा ने कहा—"वो कुल्हाड़ियां उठा ले, एक इकड़ा सुंगरा बहुत
दिक्कत करता है कभी-कभी, जानता है, बूढ़ी हूं सो खूब ढिटाई देता
है ।"

टपरे के छप्पर से पारो ने कुल्हाड़ी खींचकर निकाल ली और अम्मा
के पीछे चल दी । सगर पुंआर पर चादरा ओढ़कर लेट गया । बूटी के
प्रभाव से उसके रक्त का प्रवाह बढ़ गया । माथे पर स्वेद-कण उभरने
लगे । उसे गरमाहट अच्छी लगी । एक अजब-सी खुमारी उसकी पलकों
को बोझिल करती चली गई । पता नहीं कब उसे नींद आ गई ।

अम्मा सिर पर लकड़ी का गट्ठा लादकर टपरे की ओर चल दी ।
छे-पीछे फुदकती हुई पारो…आंचर में करौंदे और झरबेरिया के बेर
भरे, हरी कच्ची इमली चबाती हुई । अम्मा ने उसे सूखी-सूखी लकड़ियों
पर कुल्हाड़ी चलाते हुए देखा था । उसकी बांहों में बल था । उसके मन
में आज भी उत्साह था । मंजिल का ठिकाना नहीं, घर का पता नहीं
अपना कहने को छोटा भाई और सामने पहाड़-सी जिन्दगानी । जंगल
ज्यादा डरावने शहर और जंगली जानवरों से ज्यादा खतरनाक वहां क
आदमी । क्या होगा इन अबोध बच्चों का ? मन ही मन घबराकर उ
कहा—"बिन्नू, सागर जाकर क्या करोगी ? कहां रहोगी ? वहां
गुजर-बसर करोगी ? मैं सोच-सोचकर घबरा रही हूं ।"

"अम्मा, तुम्हारा बोझ बनकर नहीं रहूंगी । भगवान हमारे सा
बस यही विश्वास रक्षा करेगा ।"

इतनी कम उम्र में ऐसी गजब की अक्ल ? इसके मां-बाप
रण व्यक्ति नहीं होंगे ! अम्मा इन्हीं ख्यालों में डूबी-डूबी मन

ज्वार का आटा निकालने लगी। जितना आटा था उसने सभी कोपर में डाल लिया और पानी डालकर उसे मांड़ने लगी।

पारो से रहा न गया तो उसने कह डाला—"अम्मा, आटा मौत है।"

"अरी बिन्नू, एक जोर ही तो बनाती हूं। अंधऊ को भी यही रोटी खानी होगी। भुंसारे तुम लोग जाओगे तो क्या चार रोटी भी तुम्हारे साथ न बांधूंगी?"

अम्मा आटा मांड़ती रही। पारो के मस्तिष्क में मां के चित्र उभरने लगे। ऐसे ही आटा मलते-मलते मा उसे वेद-पुराणों की कहानियां सुनाती थीं। दुनिया-भर की सदाचार और ज्ञान की बातें बतलाती थी। पारो के नाना कथावाचक पंडित थे। पारो के पिता गाव के ही स्कूल में मास्टर थे। मा को धार्मिक पोथियां बांचने का शौक था। उसे ढेर सारी पौराणिक गाथाएं कंठस्थ थी। पारो के पिता की आकस्मिक मृत्यु पर धार्मिक संस्कारों ने उन्हे टूटने नही दिया, उन्होंने कभी भिक्षावृत्ति नही अपनाई। काका ने धोखेबाजी की। मा ने उसे प्रभु इच्छा मानकर स्वीकार कर लिया। कितना परिश्रम करती थी और बच्चों को लाड़-प्यार से पालती थी। पारो में शायद वही संस्कार जागे थे और सब कुछ पीछे छूट जाने पर भी वह एक अनजान डगर पर नये संकल्पों के साथ बढ़ रही थी। उसे ईश्वर में घोर आस्था थी।

अम्मा आटा मांड़कर पीछे तलैया मे सपरने चली गई। पारो ने उठकर चौके का उसार करने की ठान ली।

वह अन्दर टपरे में घुसी तो पुनः एक बार चौंकी। मैली पुरानी हजार थेगरा सिलकर बनाई गई कथरी ओढने के नाम पर। दो फटे पुराने बोरे अम्मा का बिछौना। चूल्हा काला स्याह, चौका मुद्दत से बिना लिपा-पुता। चूल्हे में भरी हफ्तों की राख। दो डबुलियां मिट्टी की—एक मे नमक तथा दूसरे में राई। छप्पर से लटकती एक बोतल में लगभग आधा, जलाने वाला घासलेट। दूसरी बोतल पर इतनी गर्द चढ़ी हुई है कि समझ मे नहीं आता अंदर क्या है···उसे लगा इसमे चिकनाई है। एक मटेलनी मे ज्वार एक कुरईया से कम···दाल, चावल

मिर्च, मसालों का कोई नामो-निशान नहीं।

छप्पर से लटकता हुआ एक घंघरा, दो चादरें हरे रंग की, पुरानी चादर से गूंथे हुए हरे रंग के पोलका। पारो ने मजार पर हरे रंग की चादर चढ़ते देखी थी। यह भी शायद उसी तरह की चादरें थीं। लोग मजार पर चढ़ाने लाए होंगे। पारो को फिर अपनी मां की गृहस्थी याद आने लगी : 'साफ-सुथरे कनस्तरों में आटा, दालें, चावल और घी, तेल, मसाले के चमकते हुए डिब्बों में। सुबह का बासी चौका लीप-पोतकर शाम के लिए तैयार और शाम का चौका सुबह फिर पोतनी मिट्टी से लिपा-पुता साफ। देहरी द्वारों गोबर की लिपाई, आटे की रांगोली। नित्य प्रति प्रातः ठाकुर जी के स्थान पर पूजा-पाठ, आरती और सायं-काल तुलसी-चौरा पर दीया तो स्वयं पारो जलाती थी।···अम्मा क्या करती होगी दिनभर ? कोई गिरस्ती नहीं, कोई झंझट नहीं।' पारो को न जाने क्या सूझी—वह एक पुराना कपड़ा लेकर फिर डांग की ओर भागी। उसने लाल मुरम वाली धरती पीछे छोड़ी थी। वहां पहुंचकर उसने लाल माटी बटोरी, साड़ी के पल्लू में बांध ली और फिर एक बार घर की ओर भाग दी। पारो भागती है—चलती नहीं है। पता नहीं उसे भाग-भागकर काम करना अच्छा लगता है। जब वह बहुत कुछ सोचने लगती है तब उसकी चाल धीमी पड़ जाती है। जब एक बात दिमाग में उठती तब उसे पूरा करने को वह भागती है। कभी गुनगुनाने लगती है। घर आकर उसने टपरे के बाहर पुराने घड़े से पानी निकाला···फिर कुछ सोचकर पानी को वहीं रख दिया। झाड़ू उठाकर अन्दर गई, चूल्हे की राख निकाली, बाहर हरे-हरे पत्ते तोड़कर चूल्हे की कालिख छुड़ाई, फिर छान-छप्पर से कपड़े और बोतलें उतार-कर बाहर रखे। झाड़ू से ठोक-ठोककर छप्पर का कचरा गिरा, दीवारों पर झाड़ू फेरी। फिर सारा कचरा और राख बुहारकर बाहर फेंकी। अम्मा ने ज्योंही पारो की शक्ल देखी, वह खीसें निपोरकर पोपले मुंह से हंसने लगी और बोली—"यह क्या हालत बना ली है ?"

"तेरा टपरा साफ कर रही हूं अम्मा, कित्ता गन्दा घर रखती है तू। बाहर बैठ, मैं अभी लीप-पोतकर ढिक लगाऊंगी, फिर तुझे रसोई

धरने दूंगी।"

पारो फिर भागी—इस बार गोबर लेकर आई। उसने पानी डालकर टपरा गोबर और लाल मिट्टी से लीपा। चूल्हे को ढेर-सी लाल मिट्टी डालकर पोता, पूरा चौका पुराने कपड़े की पुतैड़ी बनाकर पोता। टपरे के चारों ओर ढिक लगाई, टपरे की देहरी लीपकर ज्वार के आटे की रांगोली बनाई…।

फिर उसने चूल्हे मे लकड़ियों को सलीके से सजाकर चूल्हा जला दिया…। कुछ सोचकर उसने अम्मा के कपड़े पूर्ववत् टांग दिए किन्तु एक हरा चादरा कांधे पर ओढते हुए अम्मा से बोली—"मैं भी तलैया मे नहाऊंगी। तेरा चादरा ले जाऊंगी। उसने संकोचवश पलकें झुकाकर कहा—मेरा स्नान हो जाएगा और फिर तेरा चादरा फीच लाऊंगी।"

"अरे इतना शर्मा क्यों रही है…ले जा ना।"

पारो फिर एक बार भागी तलैया की ओर। उसने फटाफट कपड़े उतारे, चद्दरा लपेटा और पानी में उतर गई…। सपरने के बाद उसने अम्मा के चद्दरा को पत्थर पर फीचा और कपड़े धोकर घर को चल दी। उसने देखा कि अम्मा चूल्हे पर तवे के स्थान पर टूटे मटके का खपरा चढाए थी। इस बार अम्मा का संकोच फूट पड़ा—"ब्राह्मण की बेटी है। मैं चौके में बैठ गई, फिर ख्याल आया कि मेरे हाथ की रोटी खाने से तेरा धर्म चला जाएगा। अब भी तू चाहे तो अपने टिक्कर सेंक ले।"

पारो ने अत्यन्त ही सहज भाव से कहा—"सुबह जंगल में लकड़ी काटते समय मन मे यह प्रश्न उठा था। लकड़ी पर कुल्हाड़ी चलाते-चलाते मैंने मन की उस गाठ को भी छील लिया है। मेरे गाव मे एक मास्टर आया था।" फिर कुछ लजाकर बोली—"गांव के स्कूल में एक पडित था, देखने में बिल्कुल सिलबिल्ला…न जाने कित्ता सोचता रहता था। उसने कभी अपनी बिरादरी नही बतलाई। वह कहता था—'मैं तो आदमी हूं ये जात-पात के झगड़े क्यों पाल रखे हैं?' कोरी, चामरों के टपरों पर जाता था। उनके घर रोटी खा लेता था। गांव मे सबकी सेवा करता था। उसने सब गाव वालों को यही समझाया कि भैया मेहनत करो, अपने अधिकारों के लिए लड़ो, अन्याय के

सामने मत झुको।" पारो और भी अधिक पानी-पानी होकर बोली—"मुझे पढ़ाता था पंडत। हर दिन मेरे घर आता था।" पारो का मन फिर पीछे की ओर भागने लगा। उसे याद आने लगा :

जाड़े की बर्फीली रात, पारो को रखवाली के लिए काका ने फूटे ताल वाले खेत पर भेजा था। गेहूं-चना की फसल बीता-दो बीता उठ आई थी। रात में झुंड के झुंड सांभर और चीतल फसल चरने को आते थे। आधी रात तक सगर मचान के ऊपर पड़ा-पड़ा हल्ला करता रहा फिर वह सो गया। पारो जागती रही। ठंड बढ़ जाने से उसने मचान के नीचे पुआल इकट्ठा करके झाड़-झंकाड़ों के ढेर लगाकर आग जला ली। जब वह आगी ताप रही थी तभी उसने किसी आदमी की चीख सुनी, वह बेतहाशा भागता आ रहा था, आग देखकर उसके मकान की ओर मुड़ गया। आग के पास एक आकृति को देखकर वह भागती हुई परछाई पुनः चीखी—"भालू···बचाओ।" पारो को समझते देर न लगी कि किसी किसान के पीछे भालू लग गया है। उसने जलता हुआ चैला आग से निकाला और कुल्हाड़ी उठाई। बायें हाथ में जलता हुआ चैला और दाहिने हाथ में कुल्हाड़ी लेकर पारो तनकर खड़ी हो गई। पाऊना कोई किसान नहीं बल्कि पंडित जी थे। पारो ने लूघर (चैला) उनके हाथ में पकड़ा दिया और दूसरा लूघर आग से निकालकर वह चिल्लाई—"अर-र-र-र, हो···, हई-ई-ई, हू···। आओ पंडत।" कहकर वह भागी भालू की ओर, और उसका साहस देखकर गुरुजी भागे उसके पीछे-पीछे। देखते-देखते भालू मुड़ गया और पलक झपकाते ही नौ दो ग्यारह हो गया।

वह दोनों मचान को लौट आए। जिस जगह पुआल बिछाकर पारो बैठी थी उस ओर संकेत करते हुए पंडित को बैठने को कहा।

"डर गए थे···" पारो ने मसखरी से पूछा।

पंडित के होश-हवास अब तक वापस आ चुके थे। पारो पास में पुआल डालकर बैठ गई। उसने पूछा—"इत्ती रात गए, कहां निकल आए?"

पंडित ने कहा—'कलुआ के यहां मातहत बोलता रहा, छत है नहीं। उन लोगों को खेत रखाने जाना था। मैं उनके साथ बैठे तक चला गया। उधर ने नोट कहा था कि नाले के पास कुछ है ... निकल आया। मैंने पत्थर उठाकर मारा तो पीछे लग गया।"

पारो को याद आया कैसे वह हँस पड़ी थी इस बात पर और पंडित जी पानी-पानी हो गए थे। पारो ने मसखरी की—'पंडित जी, यहां तो कदम-कदम पर भालू और तेंदुए हैं। अब रात हो गई है, अब आगे न जाएं, यहीं मचान पर सो जाएं।"

'और तुम ?"

'मैं खेत रखाने आई हूं, सोने नहीं।"

पंडित जी रुकने को तैयार हो गए थे। कई रात तक वह और पारो जागते रहे। पंडित फिर सरकार की बुराई करता रहा। सरकार गरीबी दूर नहीं कर पाई है। भूमिहीन किसानों को भूमि मिलनी चाहिए। गांव के लोगों को ऊपर उठाने के लिए सरकार को नई-नई योजनाएं बनानी चाहिए। पुलिस, अदालत वाले मामलों में कानूनी सहायता निर्धन किसानों को मिलनी चाहिए। पारो ने समझाया था—सरकार का विरोध करने पर नौकरी से निकाल दिए जाओगे। पंडित कहता था वह खुद नौकरी छोड़ देगा।

उसकी बात सुनकर पारो बेचारी चिन्तित हो उठी। पंडित को नौकरी की चिन्ता नहीं थी। शिक्षा की वर्तमान पद्धति से पंडित संतुष्ट नहीं था। अब वर्तमान परिस्थितियों में तो उसके लिए नौकरी करना सम्भव नहीं था।

पारो की अधकचरी अकल उसकी ऊंची-ऊंची बातों को पूर्ण रूप से नहीं समझ सकी लेकिन वह इतना जान गई कि वह कोई सामान्य अध्यापक नहीं था। उसके सोचने का अपना ढंग था, उसके विचारों का अपना एक संसार था। नई उमर का जोश था, शायद साल दो साल नौकरी की होगी बस। पता नहीं कितना पढ़ा-लिखा था...अब कहां होगा ? क्या करते होंगे ?

अम्मा ने गरम-गरम रोटियां सेंकना शुरू कर दिया था। पारो ने झट से उठकर करौंदे की चटनी बांट ली। सगर सिल-बट्टे की आवाज से जाग उठा। पारो ने उसे छूकर देखा, बुखार उतर गया था। अम्मा ने कहा—"जाड़े का बुखार था, जड़ी ने अपना काम किया है···अब रोटी खाने में कोई डर नहीं है।" दोनों भाई-बहिन ने अम्मा के साथ ज्वार की रोटी चटनी के साथ सागोन के पत्तों पर रखकर खाई।

रात का अंधेरा आसमान से लगा। पारो का मन न जाने क्यों पंडित की बातों में उलझ जाता था।···गांव के ताल के उस पार का पीपल उसे याद आता है, वह खेतों से लौटती थी, पंडित उसे वहां मिलता था। कभी खेतों का चित्र बनाता हुआ, कभी फूटे मंदिर को रंगों से रंगता हुआ। कहता था, पारो एक दिन तेरा चित्र बनाऊंगा···उसमें ऐसे-ऐसे रंग भरूंगा कि चांद, सितारे, सूरज, फूल, कलियां, झरने, नदियां और समुन्दर भी शरमा जाए। उस दिन पंडित बहुत बहकी-बहकी बातें करता रहा। फिर उसकी बदली हो गई। जाने वाले दिन कहा था—"नौकरी छोड़ दूंगा, फिर तुम्हारे गांव आऊंगा, अपना नया पाठ पढ़ाने लोगों को···।"

उसे याद है कि पंडित के जाने पर वह कित्ता रोई थी। अकेले में उसी पीपल के नीचे रोती रही···पीपल के पत्ते हवा के झोंकों से झरते थे। उस दिन पहली बार पारो को लगा था—तालाब की लहरों की एक आवाज है, उन लहरों के ओठों पर दर्द का गीत छिड़ा था; सूरज चलता है···उस शाम उसकी चाल धीमी पड़ गई थी, शाम के रंग फीके थे, किरणों की सांसों पर राख की परत चढ़ गई हो जैसे। हर रात जंगल सुनसान की चादर ओढ़कर सोता है···पारो को लगा था सुनसान की वह चादर बहुत बढ़ गई थी। उसका दूसरा छोर बढ़ता चला गया था वहां तक, जहां धरती आसमान से मिलती है। पारो को लगा था पंडित भी उसी रास्ते पर चला गया था जो कहीं खतम नहीं होता है, न जाने कहां जाकर रुकेगा वह? कभी लौट भी पाएगा या नहीं? पारो रोती रही। पारो रोती रही, आसमान से अंधेरा बरसता रहा। उस रात उसके मन ने उसी बरसते हुए अंधेरे से कोई सम-

भौता कर लिया था। बरसते हुए अंधेरे के कुछ टुकड़े उसने उठाकर अपने सीने में लगा लिए, जो आज भी उसके साथ हैं। सोचते-सोचते बहुत रात हो गई···पारो सो गई।

बुन्देलखण्ड में बेटी को विदा बड़े बाजे-गाजे से की जाती है। अम्मा के पास क्या था प्यार के सिवा! अपनी जोड़ी हुई रकम में से दस रुपये पारो को दिए, ज्वार की रोटियां साथ बांध दीं और अशीष के साथ मजार के दो हरे चादरे दोनों बच्चों को देकर अश्रुपूरित नेत्रों से विदा किया। जाते समय पारो और सगर को बहुत-बहुत समझाया—जब कोई दुःख हो तो वापस धामोनी आ जाना। अन्त में मन नहीं माना तो अम्मा बहरोल तक उन लोगों के साथ गई और बस में चढ़ाकर ड्राइवर कण्डक्टर को बता दिया कि कथूला पुल के पास वाली सराय पर बच्चों को उतार दे।

बस के चलते-चलते अम्मा को लगा उसने अपनी जाई बेटी को विदा किया है। भारी मन लेकर वह धामोनी को लौट आई।

२

खानाबदोशों की बस्ती। लावारिसों का डेरा—शहर से दूर नहीं शहर के बीच—। आसपास निम्न, मध्यम एवं उच्च वर्ग के लोगों की बसाहट है। झांसी रोड से कुछ हटकर वह सराय है। यहां छोटे-मोटे व्यवसायी रुकते हैं। चोर-उचक्के और जेबकट व्यवसायियों के लिबास में आकर ठहरते हैं। भूखे, नंगे, कंगाल यहां नौकरी की तलाश में आकर डेरा जमाते हैं। दिन में अधिकाश समय धर्मशाला में सोते बीतता है। रात को पता नहीं कहां बेचारे नौकरी की तलाश में निकल जाते हैं। कण्डक्टर की सिफारिश पर पारो और सगर को एक कोठा मिल गया।

घामोनी की मजार वाली अम्मा के कोई हैं, काम की तलाश में आए हैं—इतना परिचय पर्याप्त समझा गया। कण्डक्टर ड्राइवर से आंतरे दिन अम्मा घासलेट, आटा, सुई-धागा, मिट्टी की हांडी और वांस के टोकरे आदि जरूरत का सामान मंगाती है। घामोनी वाले बाबा की मजार पर सभी किस्म के लोग मन्नत मांगने, चादर चढ़ाने जाते हैं, इसी नाते पारो और सगर को यहां पांच दिन के लिए जगह मिल गई।

सराय से दिनभर दोनों नहीं निकले। कोठे की छत काली थी, दीवारें चितकबरी, किवाड़ों पर पीक के ढरके। चूने पुछाव देखकर एक अजीब-सी ग्लानि मन को बुदबुदाने लगी। भाई-बहिन दहलीज के बाहर बोरा बिछाकर बैठ गए। एक अधेड़ व्यक्ति सिर पर भरा बोरा लादे आया और उसने बोरा सीधा सिर से आंगन में पटक दिया। बोरा फट गया और अन्दर से रबर और प्लास्टिक के जूते, चप्पलें बिखर गए। सगर अचरज करने लगा कि इतने सड़े-पुराने, फटे-फटाए जूते-चप्पलें बटोरकर क्यों लाया है यह आदमी? तभी उसकी औरत दूसरा बोरा लादे आ गई। मरद ने बोझे को इस बार सहारा देकर उतारा। बिखरे हुए जूते-चप्पलें बोरे में भरकर उन लोगों ने दोनों बोरे कमरे के अन्दर रख लिए। मरद-औरत दोनों बीड़ी सुलगाकर बैठ गए। उनके कपड़े-लत्तों का रंग और पहनने का तरीका उनके गांव के लोगों से भिन्न था। दिन ढल रहा था। बगल वाले कोठे वाला पीठ पर एक बड़ा-सा गट्ठर बांधे हुए आया। ताला खोलकर उसने अपना गट्ठर कमरे में रख लिया। वापस आने वाले लोगों की संख्या बढ़ने लगी। कालिख से पुते व्यक्ति शायद कोयला बेचकर या ढोकर लौटे थे। गट्ठर वाले ने गट्ठर खोलकर अंग्रेजी और हिन्दी अखबारों को अलग-अलग छांटना शुरू कर दिया। इस बार पारो के मन ने यह प्रश्न किया—इतने सारे अखबारों का क्या करेगा यह आदमी? थोड़ी देर बाद सराय धुएं से भरने लगी। रोटी वाली दहलानों में चूल्हे सुलग उठे, कंडों ने आंच पकड़ ली। कुछ लोग चूल्हे पर रोटी सेंकने लगे, कुछ लोग कंडे की आंच में टिक्कर सेंकने लगे। गेंहू के आटे के पकने की खुशबू अलग थी। एक कोने में तवे पर एक तिलकधारी आदमी रोटी सेंक रहा था। पारो को लगा—वही एक

व्यक्ति मार-कूटता है, पड़ित हो स्यात। पारो कोठा बन्द करके उसीके चूल्हे को पार कर गई। उसने मन ही मन यह निश्चय कर लिया था कि वह किसीसे यह न कहेगी कि वह अनाथ है और बेसहारा है। स्यात लोग उसका फायदा उठाने की कोशिश करें।

"राम राम राम!" कहकर वह चूल्हे के पास बैठ गई चौके की लकीर के बाहर।

पहला प्रश्न उस वृद्ध व्यक्ति का था—"कौन ठाकुर हो?"

"ब्राह्मण।"

"अकेली हो?"

पारो कुछ न बोल सकी। उसने कभी झूठ नहीं बोला था। बोलना सीखा नहीं था। इसने मात्र इतना कहा—"काम की तलाश में निकली हूँ।"

"क्या काम करोगी?"

"जो भी मिल जाएगा।"

"अरे, ब्राह्मण की बेटी हो—कैसी बात करती हो! इन कारी-गरों का काम कर पाओगी?"

"पेट के लिए कोई काम तो करना होगा। माँ-बाप नहीं हैं।"

"यह स्थान छोड़ दो। मैं तो लाचारी से पड़ा हूँ, कब चला जाऊँगा। ठेकेदारों का अड्डा है यहाँ पर।"

"मुझे साथ ले चलो, कोई काम दिला देना!" पारो ने साहस बटोरकर कह डाला।

बूढ़े के माथे पर बल पड़ गए। सुर बदल गया—"मेरे पास कौन काम है? आजकल काम कहाँ मिलता है। अपने पास महाराष्ट्र का है, किसान ठेकेदार-कांट्रैक्टर के माध्यम से ठीकेदार खरीदता है और फिर बनवाने वालों को बेच देता है। वे तलाशकर नया काम बनाते होंगे। बंगला बनाना, लोहा, लकड़ी, ईंट खरीददार लाता है। किन्हें ठिकाने देख लिए, रात को नवाबशाही कर जाए।"

पारो ने और अधिक न कहा। लेकिन वृद्ध को अभी तो भोजन कराना था। खुद भी दो कौर खा लेगी। मृदुल विनीत स्वर में बोली—"आटा ले आती हूँ, आप चूल्हे पर चार रोटियाँ डाल लेने दो।"

पंडित ने कोई उत्तर नहीं दिया। फिर बोला—"ब्राह्मण की बेटी हो इसलिए नहीं कह पा रहा हूं लेकिन चौका साफ तुम करोगी और बासन तुम्हीं मांजोगी।"

'इतना आप न कहते तो भी करती। मैं आटा लेने जाती हूं।" पारो उठकर चल दी। सगर को वहीं छोड़ दिया। बूढ़ा पोटली में आटा बांधने लगा।

पारो ने सुबह तक के लिए रोटी बनाकर रख लीं। सगर भोजन के पश्चात् सो गया। वह आज कल से ज्यादा स्वस्थ लग रहा था। पारो को जल्दी नींद नहीं आई। वह सोचने लगी, कल से कोई धन्धा शुरू करना होगा। रहने के लिए आगे-पीछे कोई ठिकाना तो होना चाहिए।

धरती बहुत ठंडी थी। फिर वही ओढ़ने-बिछाने की समस्या—हर दिन, हर रात की समस्या। टाट का बिछौना ठंडा हो रहा था। चादर तार-तार थी, यदि जोर से तान लो तो फट जाए। शरीर से लिपटे चिथड़ों की जान निकल चुकी थी। कहीं कोई गरमाहट नहीं थी। बदन थर-थर कांप रहा था।

"कौशल खोल!"—बगल के दरवाजे पर किसीने बाहर से दस्तक दी। पारो चौंक पड़ी।

दरवाजा खुलने की आवाज—और फिर अंधेरे में तैरती हुई फुस-फुसाहट—"पांच बोरी निकाला न, पांच रुपये चाहिए।"

दूसरा स्वर—"लेकिन आज तो दो बोरी बिका है। सुबह कालू हलवाई ने लेने को कहा है—पैसा मिल जाएगा तब दूंगा।"

पहला स्वर—"और देख अंधेरा होने के बाद कल ले आना। लोको शैड में नया अफसर आया है। स्साला बदमाश है—कड़ी नजर रखता है।"

"पकड़ने वाले तो आप हैं—सैंया भए कुतवाल, फिर डर काहे का।"

"नहीं भाई, हमको भी अपनी इज्जत प्यारी है। क्या फायदा, जल्दबाजी में काम बिगड़ जाए और तुम्हारा धंधा बन्द हो जाए," फिर दियासलाई जलने की आवाज, बीड़ी का धुआं किवाड़ की सांसर से छनकर आ रहा था।

फिर स्वर सुनाई दिया—"हुजूर कोयला ढोते-ढोते काले हो गए। एकाध वैगन कटवा दो तो कुछ दिन लेटकर खाएं, ऊंचे काम ऊंचे दाम। कोयले की दलाली में आपको भी क्या मिल रहा है। दस लोगों से पचास बोरी भी उठवाओगे तो पचास रुपये मिलेंगे। उस पर भी थानेदार का हिस्सा।"

"वैगन का काम तू अकेला न कर पाएगा। गैंग बनाना पड़ेगा।"

"हुजूर, चोर-चोर मौसेरे भाई होते हैं। गैंग बनाते क्या देर लगती है।"

"तो फिर हो जा चालू, अभी तो दरोगा दमदार है। अरे हां, बीना का सुना तूने एक सिक वैगन छिन्ना पड़ा था, रातों रात माल निकल गया। साठ हजार रुपये की चाय थी। बीस हजार रुपया तो दरोगा जी पा गए।"

"बस, ऐसा ही कोई काम करा दो।"

"दरोगा जी को खुश करना पड़ेगा।"

"जो हुक्म करो सो कर दूं।"

"राई, बेड़नी का शौक है उनको। बोल, कर सकेगा इन्तजाम? इसके बाद तो बस अपनी मुट्ठी में, पूरा स्टेशन लूट लो।"

बात खुसफुसाहट से आरम्भ हुई थी और धीरे-धीरे वह दोनों आवाजें अब तक गुम चुकी थी। इस बार एक स्वर कुछ-कुछ फिर से बुझने लगा—"बगल वाले कोठे में निन्यान्वे नम्बर का दाना ठहरा है।"

"कौन है?"

"पता नहीं, पन्द्रह-सोलह साल की जवान लौंडिया है—साथ में शायद छोटा भाई है।"

"अकेले हैं—मां बाप नहीं हैं?"

बिल्कुल अकेले।"

"तो अब तक क्या भाड़ झोंक रहा था, पहले क्यों नहीं बताया?"

"कल सुबह दोनों को दिखा दूंगा।"

"उल्लू के पट्ठे, कल सुबह किसने देखी है।—अभी से ।"

"कहां?"

"थाने पर।"

"कैसे ?"

"अबे, तू पुलिस के हथकंडे नहीं जानता। तेरे पास दो-तीन बोरा कोयला रेलवे की चोरी का है—अभी है। मैं थाने जाता हूं रोजनामचे में रपट डालता हूं कि मुखबिर से खबर मिली है कि चोरी का कोयला सराय में फलां जगह है। बस फिर जाते ही जब्ती बनाएंगे। दोनों को गिरफ्तार करके थाने ले चलेंगे। दरोगा जी का पेट भरने के बाद जूठन मेरी और मेरी जूठन तेरी।"

"हुजूर की मर्जी। बिलकुल नई कली है, दरोगा जी खुश हो जाएंगे।"

"अच्छा, तो मैं चलता हूं।"

"मैं भी चलता हूं। इस खुशी में पहले कुछ दारू-शारू हो जाए। शाम को पऊआ लगाया था। स्साले पानी मिलाते हैं क्लारी वाले। आधा घंटे में उतर गई।"

"अच्छा, तो चल, हो जाए पहले।"

कुंडी चढ़ी और दोनों के कदमों की आहट सराय के दरवाजे की ओर मलिन होती गई।

पारो को काठ मार गया था। काटो तो खून नहीं। अभी-अभी उसने जो सुना, वह क्या सच हो सकता है ? रेलवे के सिपाही चोरों से मिलकर चोरी कराते हैं। सिपाही—दरोगा—सब के सब एक से…। उसकी अन्तरात्मा कांप उठी। निर्दोष लोगों को कैसे फंसाया जाता है। उस अंधेरे कमरे में बन्द लोगों पर दुनिया की बुरी नजर थी। उसकी इज्जत खतरे में थी। उसमें यह समझ सकने की अकल थी—क्या कुछ हो सकता है, आज की रात। एक ही रास्ता है बचने का, यहां से भागना। लेकिन कहां जाएगी वह ? जाड़े की रात—अनजान शहर ? कहीं भी तो जाएगी, लेकिन उसे यह जगह छोड़नी है तुरन्त। थोड़ा विलम्ब उसका समूचा जीवन बर्बाद कर देगा। उसने भाई को झकझोरा—"सगर उठ, भाग, यहां खतरा है।" सगर नींद से जागा आंखें मलता हुआ; लेकिन पारो की घबराहट ने उसे सचेत कर दिया। उसे इतना समझ में आया कि उसे तत्काल भागना है यहां से। पारो ने बोरे में क्या भरा, क्या छोड़ा, कुछ

पता नहीं। मगर का हाथ जोरों से पकड़कर वह भाग पड़ी उस ओर जहां ढेर-सी रोशनी बिखरी दिख रही थी, जहां शोर था, जहां से आवाजें आ रही थीं। उसे अंधेरे में डर लग रहा था—उसे खामोशी खोल जाना चाहती थी। वह भीड़ में खो जाना चाहती थी, वह चार आदमियों के साथ चलना चाहती थी जहां वह चीख सके, लोग उसकी शिकायत सुन सकें। वह भाग रही थी रेल की पटरियों के किनारे-किनारे ···वह भाग रही थी और अन्ततः वह एक विशाल जनसमूह में मिल गई। भाई का हाथ पकड़े-पकड़े वह भीड़ में खो गई। उसने रेलगाड़ी के बारे सुना था, पढ़ा भी था।

रेलगाड़ी चल दी—तब उसे लगा कि उसे इस गाड़ी में बैठ जाना चाहिए था। गाड़ी चली गई, प्लेटफार्म की भीड़ छटने लगी।

भीड़ का एक छोटा सा टुकड़ा जहां जा रहा था वह उसके साथ हो गई। एक बड़ा सा घरनुमा था—इतना बड़ा···इतना ऊंचा, पत्थर और सीमेंट का बना। जगमग बिजली के लट्टुओं के अलावा जलते हुए हंडे। लाल, नीली रोशनी···शोर···। उसने देखा कुछ लोग बिस्तर खोल रहे हैं···लेटने की, सोने की तैयारी कर रहे हैं। कुछ लोग सोकर उठे हैं·· बिस्तरे बांध रहे हैं, शायद उनको कहीं जाना हो। स्टेशन है, रेलगाड़ी आती है, लोग आते हैं—लोग जाते हैं। चारों का दिमाग तेजी से काम कर रहा था। यह किसी एक यात्री का घर या मकान या कमरा नहीं है। यात्रियों के लिए बनाया गया स्थान। जैसे गांव में मन्दिरों में दह-लानें होती हैं, जहां साधु, संन्यासी, यात्री आकर विश्राम करते हैं, सोते हैं। उसी तरह बाहर शहरों से आए लोग यहां रुकते हैं। यहां आना-जाना लगा रहता है। यह स्थान आने और जाने वाले यात्रियों के लिए है। वह भी यात्री हैं, कहीं तो जाना है उन्हें···। शायद सुबह ही जाना पड़े। उसका दिमाग दौड़ता रहा। फिर उसने एक कोना चुना और बोरे से एक टाट का टुकड़ा निकाला। मगर उसके इशारे करने पर लेट गया। चादर उठाकर वह स्वयं भी उसीमें दुबक गई। इस बार चादर उसने सिर से ओढ़ी थी ताकि कोई उन्हें देख न सके, पहचान न सके।

सगर ने धीरे से पूछा—"वहां से क्यों भाग आए, यहां कब तक पड़े रहेंगे ?"

पारो ने निःश्वास छोड़ते हुए कहा—"सुबह होने तक ऐसे ही पड़े रहना। सुबह कहीं चलेंगे। हम स्टेशन पर हैं···कहीं भी गाड़ी में चलेंगे।" सगर चुप हो गया, पता नहीं कब सोया ? रात ढलती रही—पारो सोचती रही अपने अस्तित्व के बारे में। दुनिया की काली करतूतों के बारे में और उस विधाता के बारे में जिसने यह सारा खेल रचाया था।

सुबह होने में न जाने कितनी देर थी। कहां गांव के घरों की टिम-टिमाती हुई डिब्बियां, लालटेनें और कहां यह ऊंचे-ऊंचे खंभों पर लगे चकाचौंध कर देने वाले बड़े-बड़े बल्ब ? झिलमिलाती हुई इस लम्बे-चौड़े चबूतरे की रोशनियां···जगमगाते हुए डंडे···। पता नहीं चलता रात कितनी शेष होगी। दूर-दूर तक कहीं लड़ाइयों की आवाज का पता नहीं है···कोई कुत्ता नहीं भौंकता। बार-बार धरती कांप उठती है··· पहली बार सगर डरकर उठ बैठा—"पारो, धरती क्यों कांप उठती है··· इतना क्यों धड़धड़ाता है ?"

पारो उसे समझाती है—"रेल का इंजन है, भारी होता है, चलने धरती में धमक पैदा होती है। तू सो जा, डरता क्यों है, मैं जो ।"

"डरता तो मैं भी नहीं हूं, जाने कैसा-कैसा लगता है।"

सगर ठीक ही कहता है, पारो को भी जाने कैसा-कैसा लगता है !

धड़धड़ाते हुए इंजन, घूमते हुए बोझिल पहियों की आवाज, दूर संटिंग करते हुए मालगाड़ी के इंजनों की आवाजें, प्लेटफार्म पर हर क्षण उत्पन्न होने वाली एक नई हलचल। कुल मिलाकर शोर-भरी नई दुनिया। प्लेटफार्म पर वर्दी लगाए सिपाही घूम रहा है। पारो डरती है। कहीं यह वही तो नहीं ? उसकी तलाश तो नहीं है उसे ? मुंह अच्छी तरह ढांप लेती है। वह मन ही मन देवी-देवताओं को सुमरती है—भगवती, रक्षा करना इस राक्षस से। ठंड काफूर हो जाती है, माथे

पर स्वेद-बिन्दु झलक आते हैं। फटी चादर के छोर से झांकती है। सिपाही कहीं दूर जा चुका है। सोचती है इन सब रेलों की रखवाली करते होंगे यह पुलिस वाले। कोई यात्री, कोई चोर यह वस्त्र न गोल ले जाए, इंजन से कोयला या डिब्बों से और कोई सामान न चुरा ले जाए? फिर दिमाग में एक सवाल उठता है 'आखिर लोग चोरी क्यों करते हैं?' उत्तर तत्काल मिल जाता है—उनके पास धरती नहीं होगी, उन्हें मजदूरी नहीं मिलती होगी, शायद साहूकार का पैसा देना होगा। फिर यह सिपाही चोरी क्यों कराते हैं? पैसों के लिए, धन के लिए? शायद उसके बच्चे ज्यादा होंगे, रुपया कम मिलता होगा या फिर जल्दी से रुपया कमाकर साहूकार बनना चाहता होगा! यह सब कुछ भी सही मान लिया जाए तो फिर दूसरे घर की बहू-बेटियों की इज्जत से खेल क्यों करना चाहते हैं? यहां उसका दिमाग उलझ जाता है···इसका कोई स्पष्ट उत्तर नहीं मिलता। बदमाश होंगे···लम्पट। उनके सभी काम ऐसे होते होंगे! पारो को लगा वह फिजूल की बातों में अपना दिमाग उलझा रही है। उसे कल के बारे में सोचना चाहिए। क्या करना है सुबह होने पर, कहां जाना है? वह अपने दिमाग पर जोर डालने लगी। कौनसा काम वह कर सकेगी? बीड़ी बनाना सीख सकती है, उसमें कुछ समय लगेगा। जंगल कहीं आसपास हो तो लकड़ी काटकर लाएगी, बाजार में बेचेगी। वह घरेलू काम भी कर सकती है जैसे लम्बरदार के यहां राधा बच्चों को खिलाती थी, यशोदा रोटी बनाती थी। यह शहर है, बहुत से लम्बरदार होंगे और भी बड़े-बड़े आदमी होंगे। किसीके यहां गाय-भैंस हो···वह गाय-भैंस लगा सकती है, सानी दे सकती है, ढोर चरा सकती है···मगर भी ढोर चरा सकता है। पास कहीं मुर्गा बोला। पारो की तन्द्रा टूट गई। सुबह होने को है। फिर स्टेशन के बाहर पेड़ों पर सोए कौए कांव-कांव कर उठे। प्लेटफार्म पर गरम चाय की आवाज आने लगी।

सगर चादर खींचता हुआ कुनमुनाया—"बहुत ठंड है, चल चाय पीते हैं।"

पारो ने उसे घूरका—"अभी नहीं। चल, कहीं नदी···

हैं, मुंह-हाथ धोकर आएंगे।'' तभी उसके दिमाग में एक बात उठी—
ल से नीम तोड़ेंगे, उसकी दातौन बेचेंगे। चलती गाड़ी में कौन
ौन लेकर चलेगा। ताजी दतौन पैसे की चार कोई भी खरीद लेगा।'
यह ख्याल आते ही वह दोनों रेलवे लाइन के किनारे-किनारे जंगल
ओर भागे।

चलने वाले को राह मिलती जाती है। रेलवे लाइन के किनारे-किनारे ढेर से नीम के पेड़ थे। भाई-बहिन ने मिलकर खूब नीम की डालियां काटीं, दतौन बनाई, गट्ठे बांधे और प्लेटफार्म पर घुसने के पहले ही घंटे भर में सारी दतौन बेचकर उन्हें एक रुपया मिल गया। प्लेटफार्म के बाहर कतार की कतार हलवाइयों की दुकानें, छोटे-बड़े होटल...। पारो ने सोचा...भैया को चाय जरूर पिलाएगी।

एक होटल की बैंच पर दोनों बैठ गए—'चाय पीने लगे। तभी चौदह-पन्द्रह साल के दो लड़के आए, उनके सिर पर कोयले की डलियां थीं। उन्होंने झट से होटल वाले से सौदा किया और पैसे लेकर चलते बने। पारो का कौतूहल बढ़ा। उन लड़कों को भी यह कोयला स्टेशन ~ मिला होगा। होटल वाले से वह पूछ बैठी—"रेलवई का कोयला ।"

'लगता है सीधी गांव से आई है, देखती नहीं जला हुआ कोयला है!"

पारो की निरीह मुस्कान देखकर होटल वाले को लगा वाकई गां के भोले-भाले बच्चे हैं। भला आदमी था अतः उसे बच्चों में अच्छा दिखाई दी। पारो ने उसके विस्मय को शान्त कर दिया—"कल ही ग से आई हूं, मां मर गई।" बात करते-करते उसकी आंख भर आ फिर साहस बटोरकर पूछ बैठी—"कोई काम मिलेगा ?"

होटल वाला माथे पर तिलक लगाए था। इतने समय पं० नहा कर पूजा कर चुका था। सामने शिवजी की मूर्ति पर उसने अगरबत्ती रखी थी। यही देखकर पारो इस होटल पर रुकी थी।

'कोई काम मिलेगा ?' शंकर काका ने एक बार फिर गौर से

की ओर देगा। देखने में साफ-सुथरे थे, पता नहीं कौन जात हों, कैसे 'एकदम अपने होटल पर रख ले ? फिर बोला—"स्टेशन है···यहाँ कोई खाली नहीं रहता, एक पेटी उठाकर बस पर चढ़ा दोगे तो भी कोई सिक्का फेंक देगा। रेल की पटरी से जला हुआ कोयला बीन लाओगे तो भी एक टोकरी का डेढ़ रुपया मिल जाएगा। काम तो बहुत है···काम करने वाले नहीं मिले।"

पारो को लगा कि उसके कानों में अभी-अभी किसीने मिश्री घोली है। काम बहुत है···कोई खाली नहीं रहता स्टेशन पर। उसे भी कोई न कोई काम मिल जाएगा।

इस बीच दोनों चाय पी चुके थे। लेकिन पारो का मन लोहे की पटरियों के आसपास भटकता रहा। रेलवे एंजिन से गिरा हुआ कोयला पटरियों के किनारे बिखरा हुआ है। वह सगर के साथ लूट-लूटकर, उछल-उछलकर कोयला बीन रही है, जैसे गांव में आंधी में आम बीनती थी। टोकरे, दो टोकरे, चार टोकरे कोयले के भर गए हैं। वह छलांगें लगाती हुई होटल की ओर भाग रही है। हलवाई उसका कोयला खरीद रहे हैं···पैसे बरस रहे हैं···पारो पुनः स्कूल में दाखिल हो गई है· सगर को पढ़ा रही है···वह भी पढ़ रही है।

चाय का कप रखते न रखते वह सगर को लेकर दूर पटरियों के किनारे-किनारे भागती गई। खाली बोरे में एंजिन का जला हुआ कोयला बहिन-भाई भरते रहे। मील, दो मील, चार मील, पता नहीं कित्ती दूर, कोई अन्त नहीं, दूरी का कोई नाप-जोख नहीं। अब टांगें भर गईं, सांस फूल गई, बोरा भारी हो गया। दमकी दोपहर में आंखों के आगे तितलियां नाचने लगीं, दिमाग घूमने लगा, पेट दोहरा होने लगा, भुन भुनने लगा तब कहीं जाकर पारो भाई का हाथ पकड़े बोरा सिर पर लादे स्टेशन की ओर को मुड़ गई। कितना आगे बढ़ गई थी वह जोश में—अब पता चला। पांव उठने का नाम नहीं लेते। रात की थकान, सारे दिन का श्रम, उनकी रग-रग तोड़ने लगा। गिरते-पड़ते, शाम तक कोयले की खदानों में काम करने वाले मजदूरों की दुनिया लिए वह लोग उसी होटल पर वापस आए जहाँ से सुबह चले थे अर्थात् थककर

चलते हैं, मुंह-हाथ धोकर आएंगे।" तभी उसके दिमाग में एक बात उठी— 'जंगल से नीम तोड़ेंगे, उसकी दातौन बेचेंगे। चलती गाड़ी में कौन दातौन लेकर चलेगा। ताजी दतौन पैसे की चार कोई भी खरीद लेगा।' बस यह ख्याल आते ही वह दोनों रेलवे लाइन के किनारे-किनारे जंगल की ओर भागे।

चलने वाले को राह मिलती जाती है। रेलवे लाइन के किनारे-किनारे ढेर से नीम के पेड़ थे। भाई-बहिन ने मिलकर खूब नीम की डालियां काटीं, दतौन बनाई, गट्ठे बांधे और प्लेटफार्म पर घुसने के पहले ही घंटे भर में सारी दतौन बेचकर उन्हें एक रुपया मिल गया। प्लेटफार्म के बाहर कतार की कतार हलवाइयों की दुकानें, छोटे-बड़े होटल…। पारो ने सोचा…भैया को चाय जरूर पिलाएगी।

एक होटल की बेंच पर दोनों बैठ गए—"चाय पीने लगे। तभी चौदह-पन्द्रह साल के दो लड़के आए, उनके सिर पर कोयले की डलियां थीं। उन्होंने झट से होटल वाले से सौदा किया और पैसे लेकर चलते बने। पारो का कौतूहल बढ़ा। उन लड़कों को भी यह कोयला स्टेशन से मिला होगा। होटल वाले से वह पूछ बैठी—"रेलवई का कोयला है।"

'लगता है सीधी गांव से आई है, देखती नहीं जला हुआ कोयला है!"

पारो की निरीह मुस्कान देखकर होटल वाले को लगा वाकई गांव के भोले-भाले बच्चे हैं। भला आदमी था अतः उसे बच्चों में अच्छाई दिखाई दी। पारो ने उसके विस्मय को शान्त कर दिया—"कल ही गांव से आई हूं, मां मर गई।" बात करते-करते उसकी आंख भर आई। फिर साहस बटोरकर पूछ बैठी—"कोई काम मिलेगा?"

होटल वाला माथे पर तिलक लगाए था। इतने समय पं० नहा धोकर पूजा कर चुका था। सामने शिवजी की मूर्ति पर उसने अगरबत्ती लगा रखी थी। यही देखकर पारो इस होटल पर रुकी थी।

'कोई काम मिलेगा?' शंकर काका ने एक बार फिर गौर से दोनों

की ओर देखा। देखने में साफ-सुथरे थे, पता नहीं कौन जात हों, कैसे एकदम अपने होटल पर रख ले ? फिर बोला—"स्टेशन है···यहां कोई खाली नहीं रहता, एक पेटी स्टावर बस पर चढ़ा दोगे तो भी कोई सिक्का फेंक देगा। रेल की पटरी से जला हुआ कोयला बीन लाओगे तो भी एक टोकरी का डेढ़ रुपया मिल जाएगा। काम तो बहुत हैं···काम करने वाले नहीं मिले।"

पारो को लगा कि उसके कानों में अभी-अभी किसीने मिश्री घोली है। काम बहुत है···कोई खाली नहीं रहता स्टेशन पर। उसे भी कोई न कोई काम मिल जाएगा।

इस बीच दोनों चाय पी चुके थे। लेकिन पारो का मन लोहे की पटरियों के आसपास भटकता रहा। रेलवे एंजिन से फिका हुआ कोयला पटरियों के किनारे बिखरा हुआ है। वह सगर के साथ लूट-लूटकर, उछल-उछलकर कोयला बीन रही है, जैसे गांव में आंधी में आम बीनती थी। टोकरे, दो टोकरे, चार टोकरे कोयले के भर गए हैं। वह छलांग लगाती हुई होटल की ओर भाग रही है। हलवाई उसका कोयला खरीद रहे हैं···पैसे बरस रहे हैं···पारो पुनः स्कूल में दाखिल हो गई है · सगर को पढ़ा रही है···वह भी पढ़ रही है।

चाय का कप रखते न रखते वह सगर को लेकर दूर पटरियों के किनारे-किनारे भागती गई। खाली बोरे में एंजिन का जला हुआ कोयला बहिन-भाई भरते रहे। मील, दो मील, चार मील, पता नहीं कित्ती दूर, कोई अन्त नहीं, दूरी का कोई नाप-जोख नहीं। अब टांगें भर गईं, सांस फूल गई, बोरा भारी हो गया। ढलती दोपहर में आंखों के आगे तिलमिया नाचने लगीं, दिमाग घूमने लगा, पेट दोहरा होने लगा, मुख सूखने लगा तब कहीं जाकर पारो भाई का हाथ पकड़े बोरा सिर पर लादे स्टेशन की ओर को मुड़ गई। कितना आगे बढ़ गई थी वह जोश में—अब पता चला। पांव उठने का नाम नहीं लेते। रात की थकान, सारे दिन का श्रम, उनकी रग-रग तोड़ने लगा। गिरते-पड़ते, शाम तक कोयले की खदानों में काम करने वाले मजदूरों की हुलिया लिए वह लोग उसी होटल पर वापस आए जहां से सुबह चले थे अर्थात् शंकर

काका के होटल पर। शंकर काका को समझते देर न लगी कि दोनों बच्चे दिनभर पटरियों के किनारे कोयला बीनते रहे हैं। उसने तीन दंत मुस्कान से उनका स्वागत किया, हाथ-मुंह धोने को पानी दिया, चाय पिलाई, कोयला खरीदा। रात का भोजन दोनों ने वहीं से खरीदा। शंकर काका संक्षेप में इन दोनों की समस्याओं से परिचित हो चुका था। रात को होटल की बेंच पर भट्टी की गरमाहट में दोनों भाई-बहिन शंकर काका की अनुमति से सोए।

कोई क्षण कभी कहीं नहीं ठिठकता। पहिए घूमते हैं, आगे बढ़ते हैं। पारो आगे बढ़ती गई सगर का हाथ पकड़कर। स्टेशन पर मुसाफिरों का माल ढोया, कोयला बीना, होटल पर चाय-नाश्ते के बर्तन धोए। शंकर काका पिघल गया उनके बड़े श्रम से, उनकी लगन से, उनकी ईमानदारी से। उनके प्रति एक अज्ञात प्रेम उसके मन में पलने लगा। उसने मन को अधिक नहीं भटकने दिया। पारो और सगर का मेहनत-मजदूरी के लिए बाहर जाना बन्द हो गया। दोनों उसके होटल पर ही काम करने लगे।

सगर सुबह चार बजे उठकर सिगड़ी में कोयला भरता है, भट्टी जलाता है, होटल में झाड़ू लगाता है, कुर्सी-मेज साफ करता है तथा दिनभर कप प्याले धोता है। पारो सब्जियां काटती है, मैदा गूंधती है, समोसे का मसाला भूनती है, कचौड़ी की पिट्ठी पीसती है। शंकर काका शिवजी का पूजन करके हार-फूल चढ़ाकर ग्राहकों को चलाता है। वह खुश है। हर काम समय पर होता जाता है। उसका हाथ बटाने वाले लोग उसे मिले थे। उसका नौकरों पर चीखना-चिल्लाना कम हो गया। रात को नींद अच्छी आती है। मन के संशय समाप्त हो गए। पहले फिकरें थीं, सुबह वाला नौकर नहीं आया तो भट्टी समय से नहीं जलेगी, चाय-नाश्ता देर से बना तो नौकर लोग खाने-पीने की वस्तुओं पर हाथ साफ करेंगे।

दिनभर के हारे-थके भाई-बहिन रात को होटल पर ही सो जाते थे। शंकर काका बारह बजे रात को होटल बन्द करके चला जाता है। सुबह पांच-छः बजे तक आ जाता है। मेहनत का धन्धा है लेकिन कमाई

बहुत अच्छी है। जिन्दगी की गाड़ी बड़े मजे में चल रही है।

३

पारो को आशा नहीं थी कि होटल वाला काका दो जून की रोटी के अलावा महीने के अन्त में पचास रुपया और देगा। रुपया हाथ में आते ही उसने शंकर काका से प्रार्थना की कि वह पढ़ना चाहती है, हायर सेकेन्डरी की परीक्षा देगी। होटल का काम सुबह-शाम देखेगी। स्कूल में दाखिला लेगी···दिन में स्कूल जाएगी, रात को पढ़ेगी। शंकर काका के रूप में उसे देवता मिले थे।

पारो ने सरकारी स्कूल में नाम लिखवाया, किताबें खरीदीं और परीक्षा की तैयारी शुरू कर दी। सगर का मन पढ़ने में नहीं है। पारो उसे खूब समझाती है, पढ़ाने की कोशिश करती है। वह थककर सो जाता है। पारो ने सोच लिया गर्मियों की छुट्टियों के बाद उसका नाम स्कूल में लिखवाएगी—फिर वह दोनों पढ़ेंगे···। पारो रोज नया सपना देखती है। रोज कल्पनाओं के आकाश में उड़ती है। जाड़ा भागने लगा। बसन्त के आगमन ने पारो के अंग-अंग में नई आग भर दी। सगर भी पहले से अधिक स्वस्थ दिखने लगा पारो जानती है पूरे-पड़ोस की भूखी नजरें उसे घूरती हैं। पारो का मन कहीं नहीं भटकता। होटल का काम, स्कूल की पढ़ाई उसे घेरे रहती है। परीक्षाएं आईं। पारो ने होटल के काम से छुट्टी ले ली। काका ने एक और नौकर रख लिया है। पारो मन लगाकर पढ़ती रही। परीक्षाएं समाप्त हुईं। पारो ने कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया। शंकर काका ने गणेश जी को लड्डुओं का भोग लगाया।

रात के बारह बजे और शंकर काका होटल बन्द करके चले गए। काका की सलाह मानकर पारो अभी तक होटल के अन्दर सोती है।

गर्मी लगती है लेकिन क्या करे। आसपास तमाम लुच्चे-लफंगे घूमते हैं। नया नौकर गनेश बाहर बेंच पर सोता है। शंकर काका चले गए तो गनेश ने दरवाजे से मुंह सटाकर कहा—"पारो, फस्ट क्लास पास हुई हो। काका ने लड्डू बांटे हैं, अभी तेरे लड्डू खाने हैं।"

पारो ने अन्दर से उत्तर दिया—"खा लेना।"

"कब खिलाएगी ?"

पारो को उसकी आवाज की तड़प अच्छी नहीं लगी। फिर भी बोली—"कभी भी।" और करवट लेकर सोने की चेष्टा करने लगी।

गनेश को नींद नहीं आ रही थी। वह सोना ही नहीं चाहता था। वह सोच रहा था···'क्यों न आज की ही रात···?' लेकिन पारो ने अन्दर से कुंडी लगा ली है। सहज में आवाज देने पर शायद न खोले। फिर अन्दर सगर भी सो रहा है। लेकिन पारो ने कहा है—'लड्डू कभी भी खा लेना···।' जरूर राजी हो जाएगी। कब तक इन्हीं ख्यालों में उलझा रहा···फिर उसका ख्याल उसे कसता गया। बदन ऐंठने लगा, कान सनसनाने लगे। वह कंपकंपाहट के साथ उठा। दरवाजे पर हल्की थपकी मारकर कराहते हुए बोला—"पारो, मर रहा हूं पेट के दर्द से··· थोड़ा-सा काला नमक दे दे।"

पारो ने शायद नहीं सुना।

उसने थपकी और तेज की···आवाज को और दर्दीला बनाया—"पारो, खोल न···बड़ा दर्द है पेट में।"

अन्दर से निन्दासा स्वर फूटा—"ऊं ऽ ऽ···।"

"दरवाजा खोल···मर रहा हूं दर्द से।"

"कहां दरद है रे ?" नींद में डूबी पारो ने कहा।

"पेट दुखता है—जैसे किसीने चाकू भोंक दिया हो। देख, डिबिया में काला नमक रखा है, थोड़ा-नमक दे दे।"

गनेश को लगा शायद पारो उठी है, वह अंधेरे में बिजली का बटन टटोल रही होगी।

गनेश ने फिर नाटक किया—"तू क्यों परेशान होती है। दरवाजा खोल, मुझे पता है नमक की डिबिया कहां धरी है।" पारो ने दरवाजा

खोल दिया।

गनेश ने अन्दर घुसते ही दरवाजा बन्द कर लिया। पारो पर अप्रत्याशित हमला हुआ तो वह घबरा गई। इससे पहले कि वह कुछ चीखे-चिल्लाए, गनेश ने एक हाथ से उसका मुँह दबा लिया—दूसरा हाथ छाती पर रखकर जोर से अपने बदन से सटा लिया और बोला—"बिल्कुल भी आवाज निकाली तो चाकू मार दूंगा, मुझे भरपेट लड्डू खा लेने दे।"

पारो तिलमिला उठी। वह चीखना चाहकर भी चीख न सकी। गनेश के हाथ की पकड़ सीने पर उसके दाहिने बगल से थी।

पारो को लगा, उसका दाहिना हाथ खाली है। उसने गनेश को लिपटा-झपटी में दीवाल की तरफ खींच लिया और दाहिना हाथ बढ़ाकर बिजली का बटन दबा दिया। सारे कोठे में प्रकाश बिखर गया। सगर सोया पड़ा था, उसे जगाना जरूरी था। पारो पूरा जोर लगाकर गनेश समेत धम्म से धरती पर गिरी…गनेश की पकड़ छूट गई। पारो चीखी—"भैया…!" सगर जाग पड़ा। गनेश ने दूध बनाने का चाकू उठा लिया और दबी आवाज में धमकी दी—"अगर किसीने भी आवाज निकाली तो दोनों का कत्ल कर दूंगा।" सगर अब तक उठ बैठा था। उसके बगल में धनिया-मिर्च की डलिया पड़ी थी, मसाला बाटने का बट्टा भी था। चाकू उठाकर वार करने के पहले गनेश कौंध की चोट कर देगा…सगर के दिमाग में बिजली कौंधी। उसने बट्टा उठाया और पलक झपकते ही बट्टा फेंका और गनेश का सिर फूट गया। कब चाकू हाथ से गिरा, कब वह धरती पर गिरा और कब सगर चाकू लेकर उसके सीने पर सवार हो गया…किसीको पता न चला। सगर ने पारो का ब्लाउज फटा देखा था, उसके सीने पर नाखून के निशान दिखे थे। उसका सिर भन्ना गया था। गनेश बदमाश है, वह बदमाशी के लिए रात को घुसा था। सगर और अधिक नहीं सोच सका। उसका हाथ उठा और चाकू गनेश की पसलियों में धंस गया। पारो चीख उठी—"उ-ई-ई!" और वह जोर-जोर से रो पड़ी। गनेश की गर्दन मुड़ गई थी—स्यात वह बेहोश हो गया था। पारो की चीख पर पड़ोस का

होटल वाला उठ गया। उसकी आहट से सगर घबरा गया। वह पीछे का दरवाजा खोलकर भाग निकला। बगल वाले होटल का रामविश्वास अन्दर घुसा तो दृश्य देखकर अवाक् रह गया। धीरे-धीरे भीड़ जमा हो गई। पारो रोए जा रही थी। रेलवे पुलिस के सिपाही आ गए, वे पारो को थाने ले गए। शंकर काका खबर मिलते ही भागे। थाने गए तो पारो लिपट गई—फूट-फूटकर रोई और घटना का हाल सुनाया। वह बार-बार सगर के लिए चिल्ला रही थी—"उसे ढूंढ़ो काका, भैया कहां गया ?" काका किसी भी हालत में पारो को थाने पर अकेला छोड़ने को तैयार नहीं थे। उन्होंने अपने पहचान वालों को सगर की खोज में भेजा।

सारी रात बीत गई, सगर का कहीं पता नहीं चला। पारो ने घटना की रिपोर्ट पुलिस में लिखाई। घटना-स्थल के परीक्षण से तथ्यों की पुष्टि हुई। सगर के विरुद्ध कत्ल का मामला दर्ज कर लिया गया। शंकर काका के होटल पर थानेदार साहब ने सैकड़ों बार चाय पी थी, थाने पर भी उसीके होटल से चाय-बिस्कुट जाते थे। उन्हीं के सम्बन्धों के कारण पारो को पुलिस ने अधिक परेशान नहीं किया। कत्ल के फरारी मुलजिम की जोरों से तलाश जारी है। थाने के सिपाही बीना, कटनी, भोपाल रवाना हो गए थे। छः माह की दौड़-धूप के बाद सगर कटनी में गिरफ्तार हो गया। उसे जी० आर० पी० थाने पर लाया गया। उसने पुलिस को सच्चा बयान दिया। पारो की रिपोर्ट में जो बात लिखाई गई थी उसी प्रकार घटना का ब्योरा सगर ने दिया। शंकर काका और पारो सगर से मिलने हवालात में गए। छः माह में सगर की उम्र चार-पांच साल बढ़ी हुई लगती थी। पारो बहुत रोई। रो रोकर पूछती रही—"कहां भटकते रहे भैया ! रोटी कहां खाते थे ! सोते कहां थे !" सगर तो जैसे इतने दिनों में बिल्कुल बदल गया था। उसका मन खूब भरा हुआ था लेकिन उसके चेहरे पर कोई नया भाव नहीं आया। सीखचों के पास शून्य में देखता हुआ बोला—"पारो, अपना कौनसा घरबार है, कौनसे खेत-जागीरें हैं। जहां रात हो जाती है, सो जाते हैं, भूख लगी, खा लेते हैं।"

"तेरे पास पैसे तो थे नहीं, रोटी कहां से खाता था ?"

"पारो, घर के बाहर निकलो तो पता चलता है दुनिया बहुत बड़ी है। हम जैसे बेकारों के लिए बहुत काम हैं, बहुत धन्धे हैं। मुझे अपने जैसे कितने बे घर-बार मिले, बेरोजगार मिले। हमारी एक पूरी बिरादरी है। सैकड़ों बच्चे स्टेशनों पर भीख मांगते मिले, तेल मालिश, जूता पालिश से लेकर चोरी-चपाटी और गिरहकटी…।"

"तू क्या करता था ?"

"पहले भीख मांगता था, मुसाफिर लोग रोटी-पूड़ी कुछ भी देते थे…लेकिन फेंककर देते थे। मुझे अच्छा नहीं लगा। फिर भीख नहीं मांगी।"

"तो क्या फिर जूता पालिश करने लगा ?"

"ब्राह्मण का बेटा हूं, जूता पालिश क्यों करूंगा, बाटू उस्ताद की शागिर्दी कर ली थी।"

"ये कौन-कौनसे नये शब्द बोलने लगा है ?"

"अरे भाई, किसी गुरु का चेला बन गया था।"

"तेरा गुरु क्या करता था ?"

"यहां का माल वहां करता था।"

"क्या मतलब ?"

"जिनके पास बहुत ज्यादा पैसा है—उन पर हाथ साफ करके हम जैसे बे घर-बार लोगों को रोटी खिलाता था।"

"लेकिन यह तो चोरी है, गलत काम है।"

"यह क्या जरूरी है कि दुनिया का हर इन्सान सही काम करे। सही काम करके भी इन्सान कहां बच पाता है ?"

"ये तू, कैसे कहता है ?"

"गनेश को चाकू मारकर क्या मैंने सही काम नहीं किया ? फिर हवालात में मैं क्यों बन्द हूं और बाटू के साथ जेब काटकर क्या मैंने गलत काम नहीं किया था ? लेकिन उसके बाद हम लोगों ने मौज-मजे उड़ाए थे।"

"मैं कानून तो नहीं जानती; लेकिन गनेश को मारकर तूने सही

काम किया है तो अदालत तुझे छोड़ देगी। लेकिन चोरी करके तू अपने-आप को भी क्षमा नहीं कर सकेगा। तू इसके लिए बना ही नहीं था। दुर्दिन इन्सान को लाचार कर देते हैं। मैं जानती हूं, तू मजबूर था। सब ठीक हो जाएगा सगर भैया, तुम घबरइयो मत, अभी पारो जिन्दा है।" बोलते-बोलते पारो को लगा सीने से उठने वाला गुबार गले में आकर अटक गया है…। आवाज कांपने लगी, घुटने लगी और टप-टप बड़े-बड़े गरम आंसू उसके नेत्रों के कोरों से टपकने लगे। पीछे हवलदार खड़ा था, बोला—"मुलाकात का समय खत्म हो गया, बाहर चलिए।

पारो वापस तो आ गई लेकिन एक बात उसके मन को मथती रही कि किसी प्रकार सगर को जमानत पर छुड़ाना है। इतने थोड़े दिनों में वह चोर-बदमाशों का साथ पकड़कर बहकने लगा था। जेल में न जाने कैसे-कैसे चोर-बदमाश उसे मिलेंगे। उनकी सोहबत में वह क्या-क्या नहीं सीखेगा? पारो ने अपने मन की बात शंकर काका को बतलाई तो उन्होंने उसे विश्वास दिलाया कि वकील से उसकी जमानत की अर्जी लगवाएंगे।

उसी दिन पूजा-पाठ से निवृत्त होकर शंकर काका कचहरी चले गए। फौजदारी मुकदमे लड़ने वाले एक बड़े वकील से शंकर काका ने सम्पर्क साधा। वकील साहब ने घटना का पूरा हाल सुनकर उसे यकीन दिलाया कि जमानत हो जाएगी। अपराधी की उम्र सोलह बरस से कम बतलाएंगे तो मजिस्ट्रेट साहब भी जमानत ले सकते हैं। उसी दिन उन्होंने जमानत की दरख्वास्त लगा दी। मजिस्ट्रेट महोदय ने थाने से केस डायरी बुलाने का आदेश दे दिया। कोर्ट साहब (सरकारी वकील) को नोटिस देकर दरख्वास्त की सुनवाई के लिए अगली पेशी लगा दी।

शंकर काका शाम के समय होटल के ग्राहक चला रहे थे। थाने से हवलदार साहब आए और बोले—"पंडित जी, कल बच्चे की जमानत पर विचार करेगी अदालत।"

"आपको कैसे पता चला?"

"अरे भाई, कायमी हमारे थाने की है, रपट दरोगा जी लगाएंगे,

तब तो जमानत मंजूर होगी। सब कुछ रपट पर तो होगा।"

"तो भैया, दरोगा जी के हाथ जोड़ लूंगा। अच्छी रपट लगा दें तो बच्चा बाहर आ जाए।"

"ऐसे थोड़े ही रपट लगती है ?"

"अरे भैया, दरोगा जी तो मुझ पर वैसे ही मेहरबान हैं, मेरे काम में उन्हें क्या सकोच होगा ?"

"बात यह है पंडित जी, थोड़ा थाने से बाहरी करेगा तो खाएगा क्या ?"

"क्या मतलब ?"

"पंडित जी, पुलिस और अदालत किसीका मुलाहिजा नहीं करती। यहां का मूलमन्त्र है—दाम कराए काम…।"

"तो बताओ न, क्या करना पड़ेगा ?"

"दरोगा जी की पूजा कर दो। काम की शुरुआत अच्छी होगी…" हवलदार ने शंकर काका के नजदीक आकर धीमे से कहा।

"आप तो खुलासा बता दो, क्या करना होगा ?"

"कम से कम दो सौ रुपये तो अभी लग ही जाएंगे।"

"दो सौ तो बड़ी रकम है।"

"जमानत भी तो कत्ल के मुकदमे की है, ऐसे पता नहीं कितने दो सौ रुपये खर्च करने पड़ेंगे।"

उसी समय पारो निकल आई। उसके हाथ में दो सौ रुपये थे। वह आड़ में खड़ी-खड़ी सब सुन रही थी। उसने रुपये शंकर काका की ओर बढ़ाते हुए कहा—"यह रुपये इन्हें दे दो। भैया को कल ही छूट जाना चाहिए।" शंकर काका के हाथ से हवलदार ने बिना कुछ कहे-सुने, बिना संकोच के रुपये उठा लिए। बीड़ी सुलगाकर इत्मीनान से कश खींचा और बोला—"कल डायरी लेकर मैं खुद अदालत आऊंगा, रिपोर्ट बढ़िया लगवाने की जवाबदारी मेरी।"

दूसरे दिन शंकर काका पूजा करके तिलक लगाकर नई धोती-कुर्ता पहनकर साढ़े दस बजे कचहरी पहुंच गए। मजिस्ट्रेट महोदय की तबियत खराब थी। बारह बजे उन्होंने कचहरी शुरू की।

जैसे राशन की दुकान पर भीड़ लगती है उसी प्रकार वकील और मुवक्किलों ने अदालत को घेर लिया। एक आवाज, दो आवाजें, दस आवाजें। अदालत का अर्दली पक्षकारों को पुकारता रहा। पेशियां बढ़ती रहीं। दो बज गए, शंकर काका का नम्बर नहीं आया। बेचारा घबराकर वकील साहब के पास भागा गया। वकील साहब किसी दूसरी अदालत में जिरह कर रहे थे, बोले—"अदालत के बाहर बैठे रहो, तीन बजे साहब जमानतों की सुनवाई करते हैं।" शंकर काका फिर जाकर पीपल की छाया में जम गए। थोड़ी ही देर में उन्हें थाने का हवलदार आता हुआ दिखाई दिया। उनका बुझा मन खिलने लगा। ओठों पर मुस्कान थिरक गई। पपड़ाए होंठों पर जीभ फेरकर हवलदार साहब से राम-राम की और रपट के बारे में पूछा।

हवलदार ने खीसें निपोरकर कहा—"रपट तो बढ़िया लगवा ली है, लेकिन कोर्ट साब टांग मार रहे हैं।"

"क्या मतलब ?"

"अरे, सरकारी वकील साहब जो होते हैं उनका कहना है कत्ल का मुकदमा है, चश्मदीद गवाह हैं। मुलजिम का कोई घर-ठिकाना नहीं है, जमानत पर छूटते ही फरार हो जाने का पूरा अंदेशा है इसलिए कहते हैं, जमानत नहीं होने देंगे।"

"भैया, मैं तो पारो को वचन देकर आया हूं, शाम तक सगर को हाजिर करने का वचन दिया है मैंने। अब तो जैसे भी हो, मेरी मदद करो।"

"मदद, मैं क्या करूंगा। नगद नारायण की जय बोलो, कोर्ट साब चांदी के जूते से ठंडे हो जाएंगे।"

"पचास-साठ रुपये में काम होता हो तो मेरे पास हैं ?"

"अरे राम का नाम लो पंडित जी, दो सौ रुपये से धेला कम नहीं लेंगे लेकिन काम सोलह आने करके देंगे।"

"दो सौ रुपये तो मेरे पास नहीं हैं।"

"तो फिर रास्ता पकड़ो। कचहरी-अदालत बिना पैसे के आता है कोई ? जमानत भी कराना चाहते हैं और पैसा भी खर्चा करना नहीं

चाहते ?"

"अभी आप कहोगे, मजिस्ट्रेट साहब पांच सौ रुपये से कम नहीं लेंगे, तो मैं कहां से लाऊंगा।"

"आपकी किस्मत अच्छी है, यह साहब भोनू है, इसको धन-दौलत का कोई लालच नहीं है।"

"तो फिर, दो सौ रुपये मैं लेकर आता हूं।"

"और सौ रुपये ऊपर खर्च को रख लेना।"

"ऊपर खर्च क्या होगा ?"

"अरे आप अभी से घबराते क्यों हैं, जैसा मैं कहता जाऊं, आप करते जाओ, शाम तक बच्चा बाहर आ जाएगा।"

आखिरी वाक्य ने नकर बाबा के शरीर में प्राण फूंक दिए और वह रुपये लेने चले गए।

तीन बजे कोर्ट साहब पान चबाते हुए आए। हवलदार को देखकर शरारती मुस्कान देते हुए कहा—"क्यों हैड साहब, कुछ काम बना ?"

"हुजूर का हुक्म कभी खाली गया है ? चिड़िया अपने जाल में है, बस आता ही होगा।"

आटो रिक्शा रुका, नकर बाबा उतरे तो कोर्ट साहब, कोर्ट मोहर्रिर और हवलदार ने उसे घेर लिया। सीधा पीपल के नीचे ले गए। नकर बाबा ने दो सौ रुपये निकालकर हवलदार को दिए। हवलदार साहब ने वह रुपये कोर्ट साहब की ओर बढ़ा दिए और नकर बाबा से कहा—"एक दस का नोट और निकालो।" पंडित जी ने बिना किसी माना-कानी के दस रुपये का नोट कोर्ट मोहर्रिर की ओर बढ़ा दिया। कोर्ट साहब अदालत को चले गए। दस मिनट में प्रकरण की पुकार हो गई। बचाव पक्ष के वकील जब तक आए तब तक कोर्ट साहब ने बहस चालू कर दी। बहस मुलजिम के पक्ष में थी—"लड़के की आयु सोलह वर्ष से कम है, वह मेहनत-मजदूरी करने वाला है, कभी कोई अन्य अपराध नहीं किया, फरार होने की कोई संभावना नहीं, साक्ष्य बिगाड़ने की क्षमता भी उसमें नहीं है, अतः जमानत पर छोड़ा जा सकता है।" मजिस्ट्रेट महोदय ने दस हजार रुपये की जमानत पर अमर को छोड़े जाने का आदेश दिया।

वकील साहब आ गए. बहस के नाम पर उन्होंने गिड़गिड़ाते हुए —"हुजूर मामले को देखते हुए और मुलजिम की गरीबी पर रहम करते हुए पांच हजार रुपये की जमानत पर छोड़ने की गुजारिश करता हूं।" अतः मजिस्ट्रेट साहब ने इंसाफ करते हुए कहा—"ठीक है, पांच हजार रुपये की एक जमानत और इतनी ही धनराशि का मुचलका प्रस्तुत करने पर मुलजिम सगर को जमानत पर छोड़े जाने का आदेश दिया जाता है।"

शंकर काका के चेहरे पर फिर मुस्कान नाच गई। वकील साहब के पीछे-पीछे काका बाहर आए। वकील साहब ने पूछा—"जमानत कौन देगा ?"

"मेरे सिवा और कौन है उसका ?"

"आपके पास जमीन-जायदाद है कुछ ? हैसियत क्या है आपकी ?"

"जमीन-जायदाद है, भैंस-गाय हैं, होटल है।"

"बस, इतना काफी है, आप खसरा-खतौनी या मकान का बैनामा ले आइए।"

"अभी ?"

"आज रिहाई-परवाना बनवाना है तो आधा घंटे में सब कागजात ले आइए। चार बजने को हैं, अदालत कभी भी उठ सकती है, अगर साहब उठ गए तो मामला कल को चला जाएगा।"

"वकील साहब, अभी-अभी तो एक घंटा चाय पीकर लौटे साहब। अभी इतने मुकदने वाले उनका इन्तजार कर रहे हैं, अभी साहब कैसे चले जाएंगे ?"

वकील साहब ने कर्कश स्वर में कहा—"अजीब आदमी हो, स[illegible] को जब जाना होता है, चले जाते हैं। पेशकार साहब तारीखें द[illegible] रहेंगे।" पेशकार साहब पान गाल में दाहिनी ओर दबाए हुए दिखे। वहीं से नाटकीय स्वर में बोले—"पेशकार की याद कर[illegible] वकील साहब, पेशकार हाजिर है।"

वकील साहब ने कहा—"नया मुवक्किल है, कुछ जानता-[illegible]

नहीं है। हैसियत का कोई सबूत नहीं लाया है, घर जाकर कागजात लाने को कह रहा है।"

"तब तो जमानत कल ही होगी।"

"क्यों ?"

"साहब उठने के मूड में हैं। मैं सिगरेट की डिब्बी लेने गया था, सिगरेट जेब में डाली और साहब गए।"

"पेशकार साहब, किसी भी तरह हो, काम तो आज होना है ?"

"तो फिर भरवाइए जमानतनामा, हैसियत का सबूत फिर पेश कर देना। पांच हजार रुपये की जमानत है, पचास रुपया होगा…। रिहाई-परवाना तैयार है। मैं अभी साहब के दस्तखत करा लूंगा।"

शंकर काका ने यन्त्रवत् पचास रुपये के नोट निकालकर पेशकार साहब के हाथ पर रख दिए। वकील साहब ने जमानत मुचलका भरे। कागजात पेशकार साहब को दिए गए, वह दो मिनट में साहब के दस्तखत करा लाया। साहब चले गए।

पेशकार ने शंकर काका की ओर देखकर कहा—"देखा आपने, अगर दस मिनट की देर हो जाती तो काम अटक जाता। चपरासी को पेशकार साहब ने इशारे से बुलाया।

"पंडित जी, पांच रुपया चपरासी को दे दो, यही रिहाई-परवाना लेकर जेल जाएगा।" पंडित जी ने तुरन्त पांच रुपये का नोट बढ़ाया। तभी हवलदार साहब हाजिर हो गए। पंडित जी को बाकायदा सलाम करके बोले—"पंडित जी, कल से आपका काम आगे-आगे कर रहा हूं, मेरा इनाम आपकी श्रद्धा पर निर्भर है।"

पंडित जी रुआसे हो आए थे। फिर भी रुलाई रोककर दस रुपये का नोट उन्होंने हवलदार साहब की ओर बढ़ा दिया।

चपरासी बोला—"चलिए पंडित जी जल्दी। पांच बज गए तो जेल वाले परवाना नहीं लेंगे। चपरासी पंडित जी के साथ बाहर आया और बोला—"आटो रिक्शा लाइए, साइकिल पर जाएंगे तो देर हो जाएगी।" दोनों लोग आटो रिक्शा पर सवार होकर जेल चले गए।

चपरासी ने आटो रिक्शा से उतरते हुए कहा—"यदि रिहाई आज

ो करानी है तो आखिरी पूजा और कर डालिए।"

"अब क्या रह गया है?"

"रिहाई-परवाने के साथ दस रुपये का खजूर छाप नत्थी कर दो। बस अभी एक घंटे में रिहाई हो जाएगी; वर्ना मामला कल तक को टल जाएगा।"

पंडित जी सारे दिन के बाद अब नोट निकालते-निकालते चिड़चिड़ा गए।

"क्या लूट-खसोट मचा रखी है, गरीब आदमी का तो गुजारा ही मुश्किल हो जाए।"

चपरासी कुछ भृकुटि टेढ़ी करके कहे इसके पहले पंडित जी ने दस रुपये का नोट उसके हाथ पर रख दिया।

चपरासी ने दस रुपये के नोट के साथ रिहाई-परवाना गेट पर पकड़ा दिया।

जेल वार्डर और अदालत के चपरासी के बीच रहस्यमयी मुस्कानों का आदान-प्रदान हुआ। वार्डर बोला—"आज एक ही परवाना लाए हो।"

चपरासी ने खीसें निपोरते हुए कहा—"आफत के दिन हैं। लोगों को अपराध करने में डर लगता है। आजकल काम बहुत ही सम्भलकर करना चाहिए।"

"इसी डर में तो भूखों मर रहे हैं गुरू। पहले तो मुंहमांगा इनाम, बख्शीश मिल जाता था, आजकल तो लोगों की श्रद्धा का काम है।"

"अरे भैया, हमारे पेशकार साहब को जब तक खजूर छाप नोटों का पंखा बनाकर हवा न करो तब तक सिर उठाकर नहीं देखते। कहते हैं—बेटा बाबूलाल, अगर कभी पेशकार का हार्ट फेल हो जाए तो बड़े खजूर छाप नोटों का पंखा बनाकर झल देना, प्राण वापस लौट आएंगे।"

वार्डर हंसता हुआ चला गया।

एक घंटे बाद सगर को रिहा कर दिया गया।

होटल की दुर्घटना के बाद शंकर काका पारो तथा सगर को अपने

घर ले आए।

शंकर काका ने सगर की पैरवी में दिन-रात एक कर दिया। थानेदार की खुशामद…गवाहों का बंदोबस्त, वकील साहब की सेवा, कहीं कोई कसर नहीं छोड़ी उन्होंने। सगर और पारो से उन्हें प्यार हो गया था।

शंकर काका ने जी खोलकर रुपया खर्च किया, पूरा तीन हजार रुपया लग गया। अन्ततः सगर बरी हो गया। अदालत ने उसे निर्दोष घोषित किया।

सगर जानता है शंकर काका ने कितना रुपया खर्च किया है। वह उनका ऋण पटाना चाहता है लेकिन उनकी नौकरी करके कब तक वह कर्जा पटा पाएगा ? उसने स्वयं कोई काम करने की बात मन में ठानी है। रेलवे स्टेशन के पास वह काफी दिनों तक रहा था। सगर अब गांव वाला सगर नहीं था। हजारों ग्राहकों को होटल पर चलाया था, कोर्ट-कचहरी जाकर भी मन खुल गया था। वह अलग से कोई काम करेगा, बार-बार यही सोचता है। उसकी जिद देखकर पारो ने भी एक दिन अनुमति दे दी। पारो की बी० ए० प्रथम वर्ष की परीक्षा है। वह शंकर काका के काम में कोई हाथ नहीं बटा पाती है। वह शंकर काका पर बोझ बनकर भी नहीं रहना चाहती है। इसीलिए सगर को अलग से धन्धा करने की अनुमति दे दी।

पारो ने कंधे पर टांगने वाली एक बड़ी-सी झोली सगर के लिए तैयार की है। उसमें मूंगफली भरते हुए उदास हो जाती है। बहुत चाहकर भी स्वयं को रोक नहीं पाई और भैया से बोली—"भाग्य का खेल है, सोचती थी तुझे खूब पढ़ाऊंगी…डॉक्टर, इंजीनियर बनाऊंगी—आज तेरा खोमचा लगाकर तुझे भेज रही हूं।" पारो रो पड़ी। सगर भी बहुत खुश नहीं है…लेकिन बहिन का दिल न टूट जाए, इसलिए उसे समझाता है—"पारो काम छोटा हो या बड़ा, सिर्फ काम होता है। सारे व्यापार पहले छोटी पूंजी लगाकर शुरू किए जाते हैं। देखना एक दिन रुपयों का ढेर लगा दूंगा कमाकर, तू उदास क्यों होती है ?"

"बस, यूं ही मन भर आया, जा ईश्वर तेरी रक्षा करे।"

सगर प्रातः सात बजे की पैंसिजर से दमोह गया और बारह बजे तक सारा माल बेचकर वापस आ गया। थोड़ा-सा आराम करने के बाद वह उठा, उसने बोरा उठाया। काका से बांट, तराजू ली और सिविल लाइन्स की तरफ रद्दी अखबार खरीदने को निकल गया। छः बजे तक उसने १५ किलो रद्दी अखबार और मैगजीन खरीद लीं। बोरा पारो के सामने उतारता हुआ बोला—"ले पारो दीदी, तेरे लिए भी काम ले आया ?"

"ये क्या है ?"

"नगद नोट, एक किलो और आधा किलो वाले लिफाफों के नमूने लाया हूं। इन रद्दी अखबारों को और मैगजीनों को काटकर लिफाफे बनाने हैं। तू कागज काटकर तैयार कर, मैं लेई बनाता हूं। मैदा और नीला थोथा ले आया हूं।"

पारो सगर का उत्साह देखकर बहुत खुश है। कागज काटते हुए पूछती है—"सुबह के माल को बेचकर कितना कमाया ?"

"ग्यारह रुपये की बचत। अब सुबह ये लिफाफे कोमल की दुकान पर पहुंचा देगी तो सात-आठ रुपये का मुनाफा और हो जाएगा। अगर हम दोनों मिलकर बीस रुपया रोज भी कमाते हैं तो तीन सौ रुपया प्रतिमाह तक काका का अदा कर सकते हैं। इस हिसाब से दस माह में कर्जा अदा हो जाएगा।"

पारो को आश्चर्य हो रहा है, कहां से सगर के दिमाग में यह बात आई ? कितना परेशान है वह कर्जा पटाने के लिए···। यही सोचते-सोचते पारो कागज काटती रही। सगर लेई बनाकर पारो के साथ रोटी खाने बैठ गया। रोटी खाने के बाद सगर को नींद आ गई। पारो सो नहीं सकती, उसके भैया ने पहली बार उसे कोई काम सौंपा है। उसे काम पूरा करना है। बोरा बिछाकर पारो दहलान में बैठ गई। जलती हुई ढिबरी ताक में से उठाकर पास में रख ली और लेई से जोड़कर लिफाफे बनाने लगी···। एक घंटा···दो घंटा···नींद आने लगी। उबासियां आती हैं···पारो उठकर घड़े से ठंडा पानी निकालती है, मुंह पर

पानी के छींटे मारती है···नींद भागे तो काम हो। फिर बैठती है··· रात ढलने लगी···काम भी निपटने लगा। बदन का पोर-पोर दर्द करने लगा···कमर अकड़ने लगी···पारो वहीं धरती पर लुढ़क गई···अभी उठेगी फिर काम करेगी।···लेकिन कौन उठता है···कौन काम करता है। अन्तिम कुछ लिफाफे बचे थे, पारो बेसुध सोती रही।

कितनी रातें स्वेद-बिन्दुओं में नहाई, पारो काम में डूबी रही, कितने सूरज उगे—समय बीतता गया। पारो की परीक्षा समाप्त हुई···वर्ष बीता। नफर काका का कर्जा अदा हो गया। दूसरा वर्ष बीतने लगा। पारो बी० ए० द्वितीय वर्ष की तैयारी में लगी है। अभी भी लिफाफे बनाती है। मगर हर दिन नई-नई खबरें लाता है। अखबारों की खबरों ने भी नया मोड़ लिया है। पारो की आत्मा भीतर ही भीतर कांपती है··· पता नहीं क्या होने वाला है इस देश का!

अखबारों में हर रोज गरम-गरम खबरें छपती हैं। बड़े-बड़े कारखानों में लोहे और कोयले की खदानों में मजदूरों की हड़तालें, कालेज और विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों की हड़तालें, शिक्षकों द्वारा विरोध-दिवस, राजनैतिक पार्टियों द्वारा 'काला दिवस' सरकारी दफ्तरों में बड़े-बड़े अधिकारियों का घेराव, बड़े-छोटे शहरों में साम्प्रदायिक झगड़े, बे मौसम आगजनी की घटनाएं, रेल दुर्घटनाएं, राज्य परिवहन के कर्मचारियों द्वारा हड़तालें, देशव्यापी रेल कर्मचारियों की हड़तालें, फिर एक दिन पटना बन्द, विधान सभा का घेराव, जुलूस के दिल्ली तक जाने की तैयारी, 'इसको हटाओ', 'उसको बचाओ' 'इसको गिराओ', 'उसको उठाओ' की आवाजें दसों दिशाओं में गूंजने लगी। सुबह ताजा अखबार आता, न्यूज प्रिन्ट छूने से गरम लगता है। कानून की व्यवस्था बिगड़ रही है, लोग मनमानी कर रहे हैं, मजदूर हड़ताल करते हैं, विद्यार्थी गुडागर्दी करते हैं, शासकीय कर्मचारी घूसखोरी करते हैं, व्यापारी काला बाजारी और मुनाफाखोरी करते हैं, पुलिस जनता की सुरक्षा करने में असफल है। डकैती और कत्ल की वारदातें नये ढंग से हो रही हैं, लाखों रुपये की बैंक डकैतियां, चलती हुई रेलगाड़ियों में लूटमार, दिन-दहाड़े कत्ल और बलात्कार की घटनाएं दिन पर दिन बढ़

रही हैं। अखबार पढ़कर लगता है सदियों का सोया ज्वालामुखी धधक उठा है, चारों ओर आग का दरिया वह रहा है, आसमान धुएं से भरा है, हवाओं में जहर घुल गया है, सांस लेने से सीना दुखने लगता है, सोचने से दिमाग की नसें तड़कने लगती हैं, धमनियों में खून का वहाव वढ़ जाता है, अपनी धड़कनें आप सुनाई देती हैं।

नये-नये नारे हर दिन सुनाई देते हैं। लोकतन्त्र खतरे में है, लोकतन्त्र बचाओ, लोकनायक आगे आओ, हम तुम्हारे पीछे हैं, हम तुम्हारे इशारे पर आसमान में आग लगा देंगे।

शासन तन्त्र हिल रहा है, वुनियाद कांप रही है, सव कुछ क्या यूं ही ध्वस्त हो जाएगा? इतने वर्षों का श्रम क्या व्यर्थ जाएगा? वोया हुआ पसीना कैसे उगेगा? लोगों के सपने कैसे पूरे होंगे? बड़े-बड़े कारखानों की करोड़ों रुपयों की योजनाओं का क्या होगा। कारखाने वन्द हो जाएंगे तो उत्पादन कैसे होगा? जनता को दिए गए वायदे पूरे कैसे होंगे? देश से गरीवी कैसे हटेगी? युवा नेताओं को आगे आने का मौका कैसे मिलेगा? अभी-अभी तो उन्होंने मोर्चा सम्भाला है। उनकी तस्वीर का साइज हर दिन वड़ा होता जा रहा है। लोकतन्त्र की रक्षा करनी है, कल-कारखानों की रक्षा करनी है, खेत-खलिहानों को वचाना है, युवा मोर्चे को आगे वढ़ाना है क्योंकि अन्ततः हमको इस देश की गरीवी दूर करनी है? इसके लिए क्या करना चाहिए, शासन के कर्णधार चिन्तित हैं? योजनाएं आरम्भ हो गई। विरोधियों का जव तक पूर्ण दमन नहीं होगा तव तक कोई योजना काम नहीं करेगी। विरोधी नेताओं की गिरफ्तारियों से आग और भड़केगी। जनता विद्रोह कर देगी। कोई विद्रोह न हो पाए, कोई कोर्ट-कचहरी का दरवाजा न खटखटा सके, ऐसा कोई नया कानून वनाया जाए। देश को आगे वढ़ाने के लिए कुछ भी किया जा सकता है। धरती जल रही है, आसमान धुएं से भरा हुआ है, दिशाएं खो गई हैं अतः नये कानून के अधीन कार्य-वाही आरम्भ हो गई।

ये आग किसने लगाई थी, उसे पकड़ो, गिरफ्तार करो। ये तूफान किसने उठाया था, उसे चुपचाप कैदखाने में डाल दो। ये हड़ताल किसने

कराई थी, उसका मुंह काला कर दो। ये विद्रोह फैलाने वाले भाषण जिसने दिए थे, उसकी जुबान काटकर ओंठ सील दो। वे पटरियां जिसने तोड़ी थीं, उन्हें बेरोजगार कर दो। वे कौन थे जो हर रोज अपनी लेखनी से जहरीली बातें लिखते थे, उन्हें हवा और रोशनी से दूर करके अंधेरे बन्द कमरों में डाल दो। उन साधु महात्माओं को भी यज्ञ-वेदियों से उठा लो जो नई सुबह के लिए हवन करने बैठे हैं। मुनाफाखोरी और कालाबाजारी करने व्यापारियों के शरीर में जोंकें चिपका दो ताकि उनका खून चूस जाए। और हां, जन साधारण को बख्शा नहीं जाना चाहिए। जनशक्ति में विद्रोह होना है, जनशक्ति क्रान्ति को जन्म देती है, उनके छोटे-मोटे व्यवसायों की चिन्ता मत करो, उन्हें बेरोजगार, बेघरबार हो जाने दो, उन्हें सबक मिलना चाहिए। शहर साफ होने चाहिए, सड़कें चौड़ी होनी चाहिए। नया खून आगे आ रहा है उनके स्वागत के लिए दुकानें तोड़ो, मकान गिराओ, झुग्गी-झोपड़ें जलाओ, नये-नये बाग लगाओ, नये खून वाले नेताओं के लिए नई उम्र की नई-नई पौध लगाओ ताकि नये फूल खिलें, नई खुशबू पैदा हो, देश का नव-निर्माण हो।

और नये चाक नई तेजी के साथ घूमने लगे। कितने नेता लोग पकड़े गए। कलम की नोक से रोटी कमाने वाले पकड़े गए और कल-कारखानों में काम करने वालों से लेकर खेत और खलिहानों में काम करने वालों को घेर लिया गया। जेल और हवालातें भर गईं। जुलूसों के शोर की जगह बुलडोजरों का शोर बढ़ने लगा।

शंकर काका की दुकान और मकान को भी ऐसे ही किसी बुलडोजर ने धक्का मार दिया। स्टेशन के सामने वाली कतार की कतार साफ हो गई। नगर को अलग एक कोठा किराये पर लेकर रहना पड़ा। शंकर काका हाथ ठेले पर समोसा, कचौड़ी और भुजिया बेचने फिरने लगे। इस उम्र में बेचारे सारे दिन घूमते हैं, कहीं खड़ा होने की निगरानी करने वालों की पूजा करो या फिर चालान भरवाओ और अदालत के चक्कर लगाओ, इसलिए शंकर काका सारे दिन शहर की परिक्रमा करते हैं।

सगर को लगता है, पुलिस के भाव बढ़ रहे हैं। रेलवे स्टाफ पहले से ज्यादा परेशान करने लगा है। मूंगफली क्या इतनी सस्ती है कि कोई भी सिपाही बिना पूछे झोले में हाथ डालकर मुट्ठी भर ले, चटर-चटर तोड़कर खा जाए। टिकिट बाबू को अखबार में बांधकर देना जरूरी है। साथ में नमक की पुड़िया भी होना चाहिए। सगर ने फिर भी हिम्मत नहीं हारी। उसने लागत बढ़ा दी। मूंगफली की जगह दाल चने ने ले ली, झोली को उतार दिया, बड़ी डलिया टांग ली। पहले एक मुट्ठी मूंगफली लुटती थी तो पांच पैसे जाते थे, अब एक मुट्ठी दाल लुटती है तो पन्द्रह पैसे जाते हैं। पहले टिकट बाबू नमक की पुड़िया लेता था अब पूरा निबुआ निचोड़ने को कहता है। सब धन्धे कच्चे हैं, सन्तरा, केला, चना मूंगफली सभी कुछ बेचकर देख लिया उसने। ट्रेन में चलते-चलते काफी दुनिया देख ली। इस धन्धे से मन उचटने लगा। कितनी हरामखोरी है दुनिया में, इसे वह खूब समझने लगा था। ट्रेन कण्डक्टर उसके सामने बिना टिकट मुसाफिरों की जेबें काटता है। स्लीपर कोच में चलने वाला तो राजा है। वह अपनी बहिन को छोड़कर सुबह निकलता है। सारे दिन कड़ी मेहनत करता है। उसकी आधी कमाई पुलिस वाले और रेलगाड़ी में चलने वाला चैकिंग स्टाफ लूट लेता है।

उस दिन एक घटना और हुई। कटनी पैसिंजर की आऊटर सिगनल पर चेन खिच गई। यह कोई नई बात नहीं थी, रोज का नियम है। सगर खुश था, सारा माल बिक गया था। डिब्बे में अधिक मुसाफिर नहीं थे। शाम जब कटनी से चला, बड़ी उमस थी, थोड़ी बूंदा-बांदी हो चुकी थी। वह डिब्बे का दरवाजा खोलकर पायेदान पर पैर लटकाए बैठा था। आज कुल माल बेचकर बत्तीस रुपये मिले थे। वह सोच रहा था राखी आने वाली है, इस बार त्योहार पर पारो को राखी बंधाई में धोती देगा। हर दिन कुछ न कुछ रुपया उसके लिए निकालता जाएगा, पारो को बताएगा भी नहीं कि वह राखी पूनो के लिए रुपया जोड़ रहा है।

रात के दस बजने को था, गाड़ी फिर चली और दमोह प्लेटफार्म पर घुसी। साढ़े ग्यारह बजे तक सगर पहुंच पाएगा। रात हो जाने

पर भी पारो उसकी प्रतीक्षा करती है, उसके साथ ही रोटी खाती है।

गाड़ी रुकते-रुकते दमोह प्लेफार्म पर खड़े हवलदार ने उसकी ओर घूरकर देखा। 'यह तो दूसरे चौथे दिन मिलता ही रहता है···आज तो जैसे मेरा ही इन्तजार कर रहा है'। सगर का ख्याल ठीक ही निकला। गाड़ी रुकते ही सगर की ओर बढ़ा और बोला—"क्यों बेटा, चना मूंगफली बेचते-बेचते जेब भी काटने लगे ?"

सगर का खून खौल गया। वह बोला—"हवलदार जी, मेहनत की रोटी खाते हैं। जेबकटी शुरू कर दूंगा तो तुम्हारी तरह मोटा हो जाऊंगा।"

"क्या बकता है, उतर नीचे और चल थाने। बिलासपुर गाड़ी के एक मुसाफिर ने जेबकटी की रिपोर्ट दर्ज कराई है। जेब काटने वाले का जो हुलिया लिखाया है वह तुमसे मिलता है। तफतीश मेरे पास है, आज की रात तू हवालात का मेहमान रहेगा।"

"लेकिन मैं तो बिलासपुर गाड़ी पर था ही नहीं। मैं तो बिल्कुल सुबह निकला था। ताराचंद टिकट बाबू से पूछ लेना, उनको मैंने चाय पिलाई थी।"

"अच्छा, तो मुझे दारू पिला दे, मैं ताराचन्द टिकट बाबू से पूछ लूंगा।"

"लेकिन ····?"

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं, जल्दी से बता कितने रुपये हैं ?"

"सगर झूठ नहीं बोलता था उसके मुंह से निकला—"बत्तीस।"

"अच्छा तो बीस रुपये इधर बढ़ा।"

"लेकिन, क्यों ?"

"कारण पूछता है तो थाने चल, रात भर हवालात में काटना। सुबह बातचीत होगी।" हवलदार ने सगर की कलाई पकड़ ली।

सगर समझ गया कि वह कलाई तभी छोड़ेगा जब बीस रुपये लेगा। उसने जेब में हाथ डाला और दो दस-दस के नोट निकाल हवलदार की ओर बढ़ा दिए। हवलदार ने थामी हुई कलाई छोड़

तीन इंच की मुस्कान उसके ओठों पर नाच गई, फिर बोला—"बेटा इस लाइन पर चलना है तो हफ्ता दो हफ्ता में सलाम कर जाया करो।"

तभी ट्रेन ने सीटी मारी। सगर फिर रेलगाड़ी में चढ़ गया। डिब्बे पहले से ज्यादा खाली थे। सगर का दिमाग घूम रहा था, वह एक खाली बर्थ पर लेट गया। कितना खुश था कुछ ही देर पहले। अब बुझा-बुझा-सा पड़ा था। सोचते-सोचते वह बुदबुदाया—"हरामजादा!"

'क्यों बे, किसको गाली निकालता है···" पीछे से आवाज आई।

सगर ने पलटकर देखा, बाटू सिगरेट का धुआं उगलता हुआ उसके सिरहाने खड़ा था।

सगर ने कुतुहलवश पूछा—"तू कहां से आ गया उस्ताद ?"

"बगल वाले डिब्बे में था। तुझे प्लेटफार्म पर इस डिब्बे में चढ़ता देख लिया था।"—बाटू ने बात का उत्तर देकर फिर एक कश सिगरेट का खींचा।

"तो फिर मेरे ही डिब्बे में क्यों नहीं बैठा ? चलती गाड़ी में रात के समय डिब्बे बदलने में खतरा भी रहता है।"

"खतरा तो दोस्त कदम-कदम पर है, उससे कहां तक डरूंगा। देख मैं सौदा बनाकर आया हूं।"

"और मैं कमाई लुटाकर आया हूं······" सगर ने दुःखी स्वर में कहा।

"किस कोठे पर गया था कमाई लुटाने ?"

"यार तू हमेशा ऐसी ही बातें करता है," फिर कुछ रुककर बोला—"हरामजादा बीस रुपये खा गया।"

"कौन ?"

"वही दमोह का मोटू हवलदार।"

"अच्छा तो अब साला मेहनत-मजदूरी वालों को भी सताने लगा है!"

"कहता था,' बिलासपुर गाड़ी पर किसी मुसाफिर की जेब कट गई। उसने जो हुलिया रपट में डाला है, वह मुझसे मिलता है।"

बाटू ने दांत भींचते हुए कहा—' बदमाश, वह सौदा तो मैंने बनाया था—और सुन, मोटू हवलदार मेरे साथ था। सात गज का सौदा था, मैंने तीन तो दबा लिए। मोटू को चार गज बताया तो दो उसने दबा लिए।"

"यार तेरी बात मेरी समझ में नहीं आती। सात गज क्या होता है ?"

"ट्रेन पर चलते-चलते दुनिया-भर की भाषाएं सीख गया है, अभी मेरी भाषा और सीख। सात गज का मतलब सात सौ रुपया। देख धन्धे वाली बात है, तेरे को सब सीख-समझ लेना चाहिए। कब से समझा रहा हूं यह कबाड़ी वाला धन्धा छोड़ दे, कुछ आर्ट सीख। हम गुरू भाई अपनी भाषा में पब्लिक के बीच बात कर लेते हैं। कोई समझ नहीं सकता।"

"गुरू भाई किसको बोलता है ?"

"अपने ब्रादर को, जो हमारे माफिक धन्धा करता है।"

"जेबकट को गुरू भाई बोलता है ?"

"यार हमारे आर्ट वाला गुरू कहलाता है। धन्धे और पट्ठे अलग-अलग होते हैं यानि अपना-अपना अलग आर्ट है।"

"तू क्या करता है ?"

"हम तो सीधा रेजर मारता है, सात जेबों के अन्दर का सौदा बाहर निकाल लेता है।"

"सौदा याने माल ?"

"हां सौदा माने रुपया। सौ रुपया बराबर एक गज के। एक हजार रुपया बराबर एक थान के। अगर कोई मुसाफिर दस-बारह हजार रुपया लेकर चल रहा है तो हम अपने गुरू भाई को इशारा कर देंगे। दस-बारह थान का सौदा है, उससे मदद लेनी है तो बता दूंगा उसका हिस्सा कितना है ?"

"तो आज कितना सौदा बनाया ?"

"बताया न, सात गज सुबह, उसमें चार मेरे को पड़े। तीन गज का अभी-अभी बनाया है।"

"तुम्हारा ही धन्धा अच्छा है उस्ताद। हम तो रात-दिन मरते हैं कहीं रोटियां जुड़ती हैं। बहिन आगे पढ़ना चाहती है।"

"तू दो-चार दौरे मेरे साथ कर डाल, फिर देख रुपया कैसे बरसता ?"

"नहीं भाई, मुझसे यह काम नहीं होगा।"

"और सोच ले, तुझे तो जाने क्यों बहुत यार मानता हूं। तेरे जैसे दर्जनों शागिर्द बनाकर छोड़ दिए...तू शागिर्द बन गया तो जिन्दगी-भर साथ रक्खूंगा।...बोल, चुप क्यों है ?"

"कभी जरूरत पड़ी तो याद करूंगा। लगता है पुलिस ईमानदारी से जीने नहीं देगी।"

"यह उम्र है दोस्त कमाने और खाने की।"

सगर का मन पका हुआ था बोला—"मैं भी तंग आ चुका हूं इस धन्धे से।"

"तो फिर आज जश्न हो जाए। इसी बात पर लगा यह सिगरेट।"

बाटू ने सगर के ओठों से सिगरेट लगा दी, सगर मना नहीं कर सका। सिगरेटें जलीं...धुआं सीने में उतरा—सगर को लगा यह गलत काम है।

बाटू तभी बोला—"दुनिया में कुछ गलत नहीं है। वैसे तो गा में बिना टिकट चना बेचना भी अपराध है—लेकिन रोजी-रोटी लिए आदमी क्या नहीं करता। कुछ लोग मेहनत करते-करते मर ज हैं—और कुछ लोग पड़े-पड़े ऐश करते हैं, जिसको जैसी जिन्दगी आए।"

"मैं भी पड़े-पड़े यही सोच रहा था—मैंने सारे दिन जान और गोटू ने दो मिनट में बीस रुपये झटक लिए।"

"और मैंने पलक झपकते ही तीन सौ मार दिए। ले यार—क्या याद करेगा, एक गज तू ले जा।"

"नहीं, नहीं।"

"अबे शरमाता है ? ले रख। यह कहकर उसने सौ रुपये सगर की जेब में डाल दिया।

"मैं क्या करूंगा इतने रुपये का ?"

"घर में काम आ जाएगा। हां, कल चल मेरे साथ—सब ठीक हो जाएगा।"

"लेकिन उस्ताद, तू इतने रुपयों का क्या करता है ?" दादू पहली बार सागर के इस प्रश्न पर कुछ-कुछ बुझा-सा लगा।

दादू ने सिगरेट का एक गहरा कश लगाकर कहा—"मेरे मां-बाप नहीं हैं, कोई भाई-बहिन नहीं है। मामू के पास परवरिश पाता था लेकिन उनके घर में भी हालत खस्ता थी। पड़ोस के लड़कों की बुरी सोहबत में फंस गया और धीरे-धीरे इस धन्धे में आ गया। हफ्ते-दो हफ्ते में एक बार मामू के घर जा आता हूं। दो-चार सौ जो हुआ, वहां दे देता हूं। पुलिस-कचहरी में जो माल बचे वह यारों का।"

"अभी कहां जाएगा ?"

"बीना।"

"कहां रुकना है ?"

"गुलाबजान के कोठे पर।"

"देख मेरा स्टेशन आ गया उस्ताद मैं यहां उतरूंगा।"

"वाह, तुझे कैसे छोड़ूंगा आज की रात, मेरे साथ चल बीना, वहां दारू पिएंगे, मस्ती मारेंगे।"

"अभी नहीं, मां मेरा इन्तजार करेगी। किसी दिन उसको बोल-कर आऊंगा, दौरा लम्बा है, इन्तजार मत करना।"

"फिर मिलेगा कहां ?"

"इतवार को सट्टी में, शाम को ६ बजे।"

दादू बीना चला गया। सागर ने स्टेशन से घर का रास्ता पकड़ा।

४

र का शरीर ठोस परिश्रम के कारण और नियमित व्यायाम के
ख़ूब गठ गया है। बदन में गजब की फुर्ती है। वाटू को ऐसा
आज तक नहीं मिला था। सगर ने वाटू का पूरा आर्ट सीख
है। भोपाल और बुरहानपुर वाले सारे अड्डे घूम लिए हैं ...।
यह भी पता चल गया है कि इतना सारा धन कैसे खर्च होता है ?
र ने मुफलिसी के दिन देखे थे। मांगकर भी रोटी खाई थी—झुग्गी-
पड़ों में रहा था। सागर से फरार होकर। उसे वह सब दिन याद
—वह सब झोंपड़े याद हैं जहां उसे पनाह मिलता था। वह आज भी
हां जाता है—उसे वहां अच्छा लगता है लेकिन उसका दायरा बड़ी
तेजी से बढ़ रहा है। वाटू बहुत पीछे रह गया है। जेबकटी का धन्धा
बहुत पीछे रह गया—और बड़े धन्धे उसने हाथ में ले लिए। वाटू जैसे
दर्जनों लोग उसके झंडे के नीचे हैं।

दिन-रात सगर अपने काम में व्यस्त रहता है। उसने सिविल
लाइन में एक साफ-सुथरा मकान ले लिया है। उसका कमरा अलग
है। पारो के कमरे में स्टडी टेबल, लैम्प, स्टील अलमारी और खूब-
सूरत पलंग लगा हुआ है। सामने खुला बरामदा है। पारो ने बी० ए०
की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है प्रथम श्रेणी में। एम० ए० में उसका
विषय दर्शन शास्त्र है। अब उसे विश्वविद्यालय जाना पड़ता है। जीवन
का क्रम कितना बदल गया है। शिक्षा का प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर
पड़ा है...कितना निखार आया उसके व्यक्तित्व में...। कितना बोलती
थी पारो—लेकिन अब बिल्कुल बदल गई है। बातचीत बहुत कम करती
है। अपने कमरे में अपनी टेबल पर सिर औंधाए न जाने क्या-क्या
सोचती रहती है। बुक शैल्फ में किताबों की संख्या दिन पर दिन बढ़
जा रही है। संसार के सभी महान् लेखकों की पुस्तकें खरीदने का
शौक है। उसका भाई कमाता है—क्यों न वह अपने शौक की पु
खरीदे—। कमरे की स्वच्छ व्यवस्था है। अपने पलंग पर सफेद चैं

उसे अच्छा लगता है। कमरे के मद्धिम प्रकाश की व्यवस्था है। मन बह-लाने के लिए सगर ने रिकार्ड प्लेयर खरीद दिया है। उसकी पसंद के बहुत थोड़े से रिकार्ड्स हैं। उसके लिए सगर टेप रिकॉर्डर खरीदना चाहता है। पारो का मन घबराता है—सगर इतना काम कैसे करता है? दिन-रात अपने काम में खोया रहता है। काम के सिलसिले में बाहर बाहर रहना पड़ता है। पारो अकेली रह जाती है। वह एकाकीपन से घबराती है। हर बार सोचती है सगर से बात करेगी। लेकिन सगर बहुत जल्द-बाजी में आता है। वह हर बार नई-नई योजनाएं पारो को समझाता है। हर रोज अपने धन्धे बदलता है। उसकी दुनिया और भाषा बिल्कुल बदल गई है। वह एकदम स्मार्ट लगने लगा है। सफारी शर्ट और बेल-बाट ड्रैस उसे अच्छी लगने लगी है। चौड़े वक्षस्थल की रोम-राशि खुले कालर से बाहर झांकती है। हर कोई चौंकता है—एक वर्ष में इतने साधन कहां से जुटा लिए सगर ने। सगर को अपनी मेहनत पर नाज है। कटनी, जबलपुर, भोपाल के बाजारों में माल के आर्डर व्यापारियों से बुक करता है, फिर दिल्ली बम्बई के थोक बाजार से माल लाकर सप्लाई करता है। पारो पूछती है—इतनी मेहनत क्यों करते हो? दो-दो, चार-चार दिन बाहर रुकना पड़ता है, हमें नहीं चाहिए तुम्हारी कमाई!

सगर हवा से बात करना सीख गया है। हर बात का उत्तर उसके पास है। बहिन की शादी के लिए रुपया चाहिए। कोई घर खानदान नहीं है। मां-बाप नहीं हैं, रुपया होगा तो अच्छा वर मिल जाएगा। उसकी जिन्दगी बदल जाएगी।"

पारो कहां तक समझाए। कल ही की बात है कितना मना किया पारो ने। सगर को हल्का बुखार था। उसने अधिकारपूर्वक कहा था—"आज तुम नहीं नहीं जाओगे।"

त बीत गई। दिन ढल गया। पारो का मन कांपने लगा—
बुखार न बढ़ गया हो। परदेश में होटल या धरमशाला में पड़ा
! कौन उसकी देखभाल करेगा? फिर अपने मन को समझाती
शायद रात तक वापस ही आ जाए।

बाहर खूब अंधेरा घिरा है, बर्फीली हवा चल रही है। किसी मोटर
आवाज है। हां, शायद दरवाजे पर रुकी है। पारो को लगा शायद
या आ गया है। वह दरवाजे की ओर भागती है, दरवाजा खोला।
सामने कोई अनजाना व्यक्ति खड़ा था। उसका चेहरा सूखा हुआ था,
ओंठ पपड़ाए हुए थे। गला साफ करते हुए बोला—'मैं सगर का साथी
हूं। भोपाल स्टेशन पर रेलवे पुलिस से उसका झगड़ा हो गया। इसी
रंजिश के कारण पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया है। मैं भी झगड़े
में था। मैं किसी प्रकार बचकर निकल भागा। पुलिस को मेरी तलाश
है, यदि मैं जमानत के लिए भोपाल जाता हूं तो पुलिस गिरफ्तार कर
लेगी। तुमको जाना होगा, तुम्हारे पास शायद रुपया नहीं होगा?"

वह व्यक्ति एक क्षण को ठिठका, फिर बिना किसी झिझक के उसने
ाव से नोटों का पुलिन्दा निकाला और बोला—"एक हजार रुपया है
और जरूरत पड़ने पर मिल जाएंगे। जी० आर० पी० थाने का मुकदमा
है, वकील को इतना बतला देने से काम हो जाएगा।"

बाटू ने अपना नाम नहीं बतलाया। नोटों का बंडल पारो के हाथ
में थमाकर बाटू चला गया। जिस गाड़ी से वह आया था वह कुछ दू
पर खड़ी उसका इन्तजार कर रही थी। पारो ने गाड़ी स्टार्ट होने
आवाज सुनी। बाटू चला गया।

पारो ठगी-सी खड़ी रही। फिर कुछ सोचकर उसने मकान में त
लगाया और वह शंकर काका के घर की ओर भागी। काकी घर
उन्होंने बताया—"कल संक्रान्ति है ना? तुम्हारे काका बरमान का
करने गए हैं। कल शाम से पहले क्या आएंगे?"

पारो बहुत घबराई। सोचा था काका को लेकर वकील,
जाएगी। वकील को भोपाल साथ ले जाएगी ताकि वहां भटकना
लेकिन अब क्या होगा?

प्रश्न के साथ ही पारो के मन में उसका उत्तर कौंध गया। कुछ भी हो, भैया को छुड़ाना है। वह अकेली भोपाल जाएगी, भैया का छूटना जरूरी है। कत्ल वाले मुकदमे में जो वकील थे उन्हीं की मारफत से जाना ठीक होगा। उन्हीं ने तो भैया को कत्ल के मुकदमे से बरी कराया था।

पारो ने एक ऑटो रिक्शा को रोका और सीधी वकील साहब के घर को चल दी। वकील साहब का घर उसने देखा था। कत्ल वाले मुकदमे के सम्बन्ध में वह वहां जा चुकी थी।

वकील साहब वकालतखाने से उठ चुके थे। मुंशीजी ने कहा—"आप सुबह आ जाइए, अभी तो वकील साहब के मेहमान आए हैं, उनसे जरूरी बातचीत चल रही है। अभी नहीं मिलेंगे।"

"उनसे कहिए, मगर भोपाल में बन्द हो गया है। उसका कत्ल का मुकदमा वकील साहब ने लड़ा था। जमानत के लिए भोपाल से जाना है वकील साहब को।"

मुंशीजी को लगा शायद कोई बड़ा मुकदमा है। भोपाल तक जाने की फीस भी तगड़ी मिलेगी, वकील साहब को बता देने में क्या हर्ज है।

मुंशीजी वकील साहब के कमरे का पर्दा उठाकर खांसते हुए अन्दर घुस गए और बोले—"हुजूर, गुस्ताखी माफ हो, मामला जरूरी था इसलिए आना पड़ा। वो स्टेशन वाले कत्ल के मामले वाला लड़का फिर किसी मामले में भोपाल में पकड़ा गया है। उसकी बहिन आई है। एक मिनट के लिए मिलना चाहती है। कहती है, वकील साहब को भोपाल से जाना निहायत जरूरी है। इस बार फीस भी अच्छी देने को तैयार है।"

वकील साहब के दिमाग में उस अल्हड़ श्याम बाला की तस्वीर थी। वह मना नहीं कर सके और बोले—"यहीं ले आइए उसे।"

पारो ने अपना आंचल सम्भाला, बाल को कसकर कंधों पर समेटा और वकील साहब के सामने उपस्थित हो गई। सामने सोफे पर वकील साहब और मित्र बैठे थे। साइड टेबल पर रखा हुआ टेबल लैम्प कमरे में मद्धिम प्रकाश फैला रहा था। सोफा पास होने से वह वकी

मित्र को भली भांति पहचान सकी। पारो बुरी तरह से चौंकी सने अपने मनोभावों को प्रकट नहीं होने दिया। पंडित ने डाढ़ी ली, बाल भी खूब बढ़े हुए हैं—लेकिन वह उन्हें पहचान रही पंडित हैं जो उसके गांव में आया था, जिसे उस जाड़े की रात ने खदेड़ा था, जिसके जाने के बाद पीपल सूख गया था। पारो ील साहब को नमस्कार करने के बाद बड़े प्रेम से पंडित को कार किया और पूछ बैठी—"आपने मुझे पहचाना ?"

पंडित हां करे या न ? यही प्रश्न था।

वह पारो को पहचान गया था…लेकिन पारो इस प्रकार यहां लेगी, उसने सोचा भी न था। गांव की लड़की पारो क्या यहां आ कती है।…कितनी बड़ी हो गई, कितना बदल गई है…यह साड़ी… यह शाल, पूरी तराशी हुई पारो…लेकिन वह इन्कार नहीं कर सकता…। मुंह से अनायास ही निकला—"पारो, तुम यहां कैसे ?"

पारो को लगा उसका उफनता हुआ खून सहसा नसों में जमने लगा है। दमकता हुआ चेहरा मुरझाने लगा, आवाज बदल गई—"मां अचा-क चल बसीं, काका ने गांव छोड़ने को मजबूर कर दिया। यहां भैया साथ थी, भैया को भोपाल में पुलिस ने पकड़ लिया है।"

वकील साहब समझ गए—वे दोनों पूर्व परिचित हैं।—लेकिन इससे क्या ?

उनके लिए भोपाल जाना सम्भव न था। उन्होंने सीधी बात करना ठीक समझा—"देखिए, मेरा कल एक जरूरी मुकदमा है, मैं भोपाल नहीं जा सकूंगा। आप सुबह आएं, मैं अपने एक वकील मित्र के नाम पत्र दे दूंगा। आप पत्र लेकर उनके पास चली जाएं, जमानत हो जाएगी।"

पारो ने बिना किसी संकोच के कहा—"लेकिन मैं रात की बस ही जाऊंगी, आप पत्र अभी लिख दें।"

वकील साहब ने अपने मित्र की ओर देखा।

उन्होंने बड़ी सादगी से कहा—"आप पत्र लिख दें। रात में १… जबलपुर बस मिलेगी। मुझे भी तो उसी बस से जाना है, पारो …

अकेली कहाँ परेशान होगी ?"

वकील साहब ने पता लिख दिया। पारो ने उसे संभालकर रख लिया। फिर पूछ बैठी—"बारह बजे के पहले कोई बस नहीं है क्या ?"

मुन्शीजी बोल पड़े—"बारह तक तो कोई बस नहीं है।"

"तो मैं चलती हूं।" पंडित की ओर देखकर उसने कहा—"आप बस स्टैंड पर मिलेंगे न ?"

"हां मुझे भी उसी बस से जाना है।"

"तो ठीक है, मैं आपको वहीं मिलूंगी।"

घर आकर पारो ने कुछ आवश्यक कपड़े रखे। भैया के लिए एक जोड़ा कपड़ा रखा, रुपयों का बंडल कपड़ों के बीच में जतन से दबा दिया। मकान बन्द करके बस स्टैंड के लिए निकल पड़ी—'बारह बजने को एक घंटा बाकी है, इतनी हड़बड़ी क्या है बस स्टैंड जाने की ? पंडित से इतना अपनापन जताने की कौन ज़रूरत थी ? क्यों उसने कहा कि वह बस स्टैंड पर मिलेगी ? क्यों इतनी जल्दी भागी जा रही है ? पंडित पहला पुरुष था जिससे गांव में मिलकर उसे अच्छा लगा था। उससे बात करके उसे अच्छा लगता था लेकिन वह बहुत बदल गया। पहले ही दुबला-पतला था, अब तो बिल्कुल सूख गया है, आंखें कैसी डरावनी लगने लगी हैं ? उसकी पुतलियों में अंगार की दहक है। कितना गुमसुम—परेशान। यहां क्यों आया होगा वकील के पास ? होगा कुछ काम, हमें क्या ?' पंडित के बारे में सोचते-सोचते पारो मोटर स्टैंड तक पहुंच गई।

झील के उस पार अंधकार की बांहों में सोई हुई पहाड़ियां, झुके हुए आसमान में झिलमिलाते हुए सितारे, सारा झील का रूप मायावी-सा प्रतीत होता है जब कोई बस का इंजन खड़खड़ाता है। पारो वहीं झील के किनारे बने शेड में खड़ी हो जाती है। वह किसीको ढूंढ रही है। पंडित अभी तक क्यों नहीं आया ? कैसी पगली है—किसका इन्तज़ार करे ? पंडित कौन है ? नहीं आएगा तो क्या होगा ? मन बोझिल होने

है। इनना हल्ला-गुल्ला क्यों है यहां ? झील के किनारे बस स्टैंड
बनाया, किसने बनाया ?
यहां आमों की अमराई क्यों नहीं है, घाट के किनारे पीपल क्यों नहीं
है ? झींगुरों की झनकार उसे क्यों नहीं सुनाई देती ? वहां फूटा
मन्दिर होना चाहिए था—। क्यों नहीं यहां वह खामोशी है जो पारो को
अच्छी लगती है। इस खामोशी में वह कबूतर की गुटर गूं सुन सकती है,
दूर रंभाती हुई गाय की आवाज उसे अच्छी लगती है, वृक्षों पर पंख
फड़फड़ाती सोन चिरैया उसे भाती है।

वह भूल गई कि वह अकेली है। उसके आसपास दो-चार मनचले
मंडराने लगे हैं। उसे डर नहीं लगता…शायद इसलिए क्योंकि वह
सगर की बहिन है, जिससे बाहर के सारे बदमाश डरते हैं…। मनचलों
ने आवाजें कसना शुरू कर दिया है, शायद उसे वह लोग पहचानते नहीं
हैं ? वह उन्हें बतला देगी—वह सगर की बहिन है। फिर तो सभी
दुम दबाकर भाग जाएंगे। सगर कातिल है, लोग यह बात जानते हैं…
यह सोचकर पारो को बुरा लगता है। गुंडे-बदमाश उससे डरते क्यों
हैं। क्या वह बड़ा…वह आगे सोच नहीं सकी। उसका भैया ऐसा हो
ही नहीं सकता। जब-जब उसने भैया की गति-विधियों के बारे में सोचा
है, उसे मर्मान्तक पीड़ा मिली है। कितना चाहा उसका मन पढ़ाई मे
लगे। वह स्वयं रात-रातभर पढ़ती है—। सगर ने तो स्कूल ही छो
दिया है। जासूसी उपन्यास पढ़ता है और अपने धन्धे में लगा रहता है
फँसा थका लौटता है। धीरे-धीरे उसकी हिम्मत बढ़ती जा रही है। प
छुप-छुपकर बीड़ी पीता था, अब तो खुल्लमखुल्ला सिगरेट धोंकता
एक दिन पारो को लगा उसके कदम लड़खड़ा रहे हैं। और दिनो
भांति सगर ने चारपाई पर लेटकर कोई बातचीत नहीं की—भोज
नहीं किया। सिरदर्द का बहाना करके सो गया। पारो को नीं
आई। उसका संदेह सही निकला था, उसने भैया का मुंह सू
उसने दारू पी रखी थी। सुबह वह कुछ कहे-सुने, इसके पह
निकल गया। उसके बाद सगर धंधे के नाम पर रातों को बाह
लगा। पारो को लगा शायद दारू पीने के बाद घर आने में अ

पारो ने एक दिन बात उठा ही दी—"भैया, दारू पीने लगा है?"

सगर चुप रहा। उसने सोचा भी नहीं था पारो इस तरह साफ पूछेगी।

पारो ने उसे झकझोरा—"बोलता क्यों नहीं? क्यों पीता है दारू? खून-खानदान का कोई ध्यान नहीं है?"

सगर ने छोटा-सा उत्तर दिया—"थक जाता हूं।"

"कौन-सा पहाड़ धकेलता है जो थकान हो जाती है? अभी तो लड़का है, अभी से थकेगा तो जिन्दगानी कैसे तर होगी?"

"दिमाग पर बड़ा बोझ रहता है?

"दिमाग पर बोझ गलत काम करने वालों के रहता है। गलत काम मत करो, मेहनत करो, ईमानदारी से छोटा काम करो…फिर दारू की जरूरत नहीं पड़ेगी।"

पारो ने शायद उसकी नस पकड़ ली थी। किसी काम का बहाना करके सगर भाग गया था लेकिन पारो की बात का कोई असर नहीं हुआ। सगर को पता नहीं क्या जल्दी है—वह बहुत तेजी से आगे बढ़ रहा है। अन्त में वही हुआ जिसका उसे डर था। सगर की गिरफ्तारी के पीछे कोई और बात भी हो सकती है। इस बार वह उससे पूछेगी—वह क्या करता है? क्यों रात-रातभर बाहर रहता है? शहर में ही कोई काम क्यों नहीं करता?

—पारो चौंक गई, किसका हाथ है उसके कंधे पर? पलटकर देखा—पारो डर गई। उन्हीं मनचलों में से कोई एक था। पूछने लगा—"कहां जाओगी?"

पारो ने जुबान से उत्तर नहीं दिया—तड़ से एक तमाचा उसके गाल पर जड़ दिया। उसी क्षण शेड के पास वकील साहब की गाड़ी रुकी। उसे देखते ही दादा लोग रफूचक्कर हो गए। वकील साहब पंडित का हाथ पकड़े कह रहे थे—"मैं समझा, शैतान की तैयारी करनी है। तुम्हारी बस भी आने वाली है।"

पारो अंधेरे में खड़ी रही शेड के नीचे। गाड़ी चली गई। पंडित दूसरी ओर बढ़ने लगा तो पारो से नहीं रहा गया—"बाउ साहिब…।"

पंडित ने पलटकर देखा। अंधेरे में खड़ी पारो को पहचान लिया—
"...रे तुम कब आ गई ?"
"अभी अभी।"
वह भी पेड़ के नीचे आ गया। उसने कंधे पर पड़े झोले से कोन-...ोला निकाला और पहन लिया। वह मोटा-सा खादी का कंबल ओढ़े हुए था। उसने कहा—तुम यहीं रुको, मैं बस के टिकट निकालता हूं। तुम साथ होगी तो लोग तुम्हारे साथ-साथ मुझे भी घूरेंगे। वह उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना चला गया। इस बीच जबलपुर की ओर से भोपाल जाने वाली बस भी आ गई।

वह बड़ी फुर्ती से बस में चढ़ा और बिल्कुल पीछे वाली सीट पर निकल गया। उसने हाथ के संकेत से पारो को बुलाया। पारो के लिए उसने खिड़की के पास एक सीट बचा रखी थी। वह स्वयं कंबल में लिपटा बैठा था। बस चल दी। पारो ने कनखियों से पंडित की ओर देखा। उसकी आंखों को क्या हो गया है ? वह उस समय भी सोन-निखार से भरा रहता था लेकिन आंखों के नीचे इतने गहरे गड्ढे नहीं थे, इतनी झुर्रियां भी कहां थीं ? सब कुछ कठोर-सा लगता है। देह सूख गया है लेकिन पुतली की गहराई बढ़ गई है···कुछ अंगार-सा भर आता है। शरीर जर्जर हो गया है लेकिन मन में जो ठान रखा है, उस... धधक आत्मज नेत्रों में है। भैया की आंखों में एक ही धधक दिखती... जागता है। पंडित... हरो···लेकिन उसको देखकर हिंसा का भाव... उसके लिए। साधु-संन्यासियों... आंखों की चमक बिल्कुल नई है... क्या है आ... नाम भी नहीं है। और इतनी वाली बात भी नहीं है। इतना चुप क्यों रहने लगा है आखिरी पंडित ? पारो सोचते-सोचते ... हो उठी और झल्लाकर पूछ बैठी—"तबियत खराब है क्या ?"

"नहीं तो।"

"इतना बड़ा कंबल क्यों लपेट रखा है ? बस के अन्दर तो...
[illegible] हो ?"

"गरमाहट अच्छी लगती है।"

"...इतना कब से अच्छा लगने लगा ?"

"समय ने जुबान पर ताला लगा दिया है।"

"देह को इतना कैसे सुखा लिया ?"

"सब कुछ अभी बताना आवश्यक है क्या ?" फिर कुछ क्षण मौन रहकर पहल स्वयं बोला—"सरकार मुझे गिरफ्तार करना चाहती है, दिन-रात छुपकर काम करता हूं। सागर आऊंगा दो दिन बाद। अपना पता सुबह को लिख देना। कभी तेरे पास रुकने की जरूरत पड़ सकती है"""। इतना कहकर पहिल चुप हो गया।

पारो फिर नये बवंडर में घिर गई। आपातकालीन स्थिति का उठता हुआ तूफान"""शोर, बुलडोजर की आवाजें, गिरते हुए झोंपड़े, उजड़ती हुई बस्तियां, बेशुमार गिरफ्तारियां, भागता हुआ पहिल"""। पहिल भाग रहा है, जंजीर लिए पुलिस उसके पीछे भाग रही है, पहिल के पैर भागते-भागते लहूलुहान हैं"""बड़े-बड़े नुकीले पैरों में गड़े हुए हैं, शरीर की बूंद-बूंद खून रिसकर निकल गई है, पहिल का ढांचा बचा है, आंखें स्याह गड्ढों में धंस गई हैं, चमड़ी सिकुड़ गई है। कन्धस चोड़े टोप लगाए पुलिस से बचता-भागता हुआ नरकंकाल। पारो को लगा वह फूट-फूटकर रो पड़ेगी। वह बस के कांच के बाहर देखने लगी। भागती हुई बस—भागती हुई रात। जिन्दगी में एक नया संदेश लेकर आने वाली रात। छोटी-छोटी किताबों में पढ़ी बड़ी-बड़ी बातें, पारो की आंखों के आगे नाचने लगीं। जिन बातों का अर्थ वह किताबें पढ़कर उस समय नहीं समझ पाई थी, वह अर्थ उसको समझ में आने लगा। सारे प्रश्नचिह्न ढहने लगे, उत्तर के घेरे बड़े होने लगे। जिन्दगी एक मिशन है, अपने हिसाब से जिन्दगी जीने का अधिकार सबको बराबर है। अपने मिशन के लिए इन्सान स्वयं को भूल जाता है। व्यक्ति छोटा होता है, मिशन बड़ा होता है। त्याग आवश्यक है इसलिए पहिल की देह धुल गई है, इसलिए उसकी आंखों में एक चमक है। उसका विश्वास दृढ़ होता गया। जितना पारो सोचती गई उतना उसका मन पक्का होता गया—वह पहिल के मिशन में उसके साथ है—वह अन्त तक उसका साथ देगी। पारो ने पहिल की ओर भरपूर दृष्टि डाली। उसने देखा,

रहे थे, उसे लगा पंडित किसी पूजा में लिप्त है—उसका मुख मंडल
तेज था किन्तु पूर्णतः निर्विकार एवं निर्लिप्त। पारो को लगा
कम्बल से लिपटा शरीर ठंडे लोहे की भांति अकड़ा हुआ है, उसके स्पर्श
पारो सिहर उठी है। पारो सिहर रही है—उसे अब ठंड लगनी शुरू
हो गई है, वह कम्बल में सिमट जाना चाहती है। पारो ने अपना
शाल और अधिक कसकर लपेटा। अपनी कल्पना में वह ठंडा लोहा
छूती रही। उसे ऊष्मा देती रही। अपनी कल्पनाओं पर मन ही मन
हंसती रही पारो...

ठंडा लोहा तपाया गया है, ठंडा लोहा तप गया है—ताप से लोहा
पिघल रहा है, पिघला लोहा नये सांचों में ढाला जा रहा है, एक नया
लौहपुरुष जन्म ले रहा है, कमजोर इंसान टूट रहा है—लौहपुरुष
जन्म ले रहा है।"

इन्हीं कल्पनाओं में डूबते-उतराते रात कट गई। भोपाल—एन०
ई० एल०—बस स्टैंड।

ऑटो रिक्शा में पंडित पारो को वकील साहब के यहां ले गया।
दो मिनट वकील साहब से बात करके पंडित चला गया अपने जरूरी
काम से तथा दो-चार दिन में सागर आने का वायदा करके।

वकील साहब से पारो को जो जानकारी मिली वह चौंका दे
वाली थी। पुलिस केस के अनुसार सगर इस क्षेत्र का सबसे बड़ा वै
कटर था। चलती हुई मालगाड़ी के डिब्बों को काटकर माल नि
कर ले जाने में उसका मुकाबला करने वाला कोई अन्य अपराधी
क्षेत्र में नहीं था। पूरा गैंग था उसका।

वैगन काटने वाले उसके सहयोगी, रेलवे लाइन से माल
वाले उसके चेले। ट्रकों में माल लादकर व्यापारियों तक पहुंचा
उसके कर्मचारी। जिस आवश्यक वस्तु की बाजार में कमी हो
की वैगन काटने का सागर बीड़ा उठाता है। पार्सल बाबू, ग
लोडिंग बाबू उसके इर्दगिर्द चक्कर काटते हैं। किस स्टेश
को क्या माल लोड हो रहा है इसकी सूचना सागर के गैंग वा
है।—सगर योजना बनाता है—उसने कितनी योजनाएं बन

चंगने वाली—उसके बाद पहली बार पकड़ा गया है। फिर भी जमानत तो हो ही जाएगी—जमानतदार का इन्तज़ाम करना पड़ेगा।

यह सब कुछ पारो को सुनना शेष था। उसकी आँखें पथराने लगीं, होंठ पपड़ा गए, दिल की तेज़ धड़कनों ने उसके शरीर को झकझोर दिया। एक दर्दपूर्ण कम्पन पोर-पोर में सहस्रों सूल चुभाने वाली सिहरन, ऐसा क्यों हुआ? भैया ने ऐसा क्यों किया? किसके लिए किया? इसकी कोई सफ़ाई नहीं है उसके पास—वह जीवन में विफल गया है—वह रईस बनने का सपना देख रहा है—इसलिए वह चोरों का सरगना बन गया है। धिक्कार है उसके जीवन को। रेल की पटरियों के किनारे कोयला बीनने वाला भोला-भाला भैया इतना बदल गया है? पारो को विश्वास ही नहीं हो रहा था।

इस बार अन्तिम निर्णय होगा, भैया जमानत पर छूट जाए, उसे घर में रहना होगा। शहर में दुकान खोलेगा, खोमचा लगाएगा। वह उसे बाहर नहीं जाने देगी।—पारो कांप उठी इस ख्याल से—मगर उसने पारो का कहना नहीं माना तो क्या होगा? भाई छूट जाएगा। वह इतने बड़े संसार में अकेली रह जाएगी। पारो रो पड़ी, ऐसा नहीं हो सकता। वह सागर को समझाएगी, उसे सौंप देगी। मगर उसका भाई—उसके शरीर में वही खून है।

पारो ने वकील साहब की फीस निकालकर मुनीमजी को दी। मुनीम जी के साथ वह कचहरी गई, कचहरी में भाई मिला, जमानतदार का इन्तज़ाम था। सब इन्तज़ाम था। शहर के बड़े-बड़े व्यापारी सागर की जमानत कराने को घूम रहे थे। सागर साधारण आदमी नहीं था। पारो दूर खड़ी से देख रही थी।

पारो का मन अवसाद के सागर में डूबा हुआ है। सागर की जमानत उसने फिर करा ली है। दोनों बस से शहर को चल दिए, सागर उसके पास एक ही सीट पर है—लेकिन नज़रें मिलाने से कतरा रहा है। पारो बार-बार सवाल उठती है यदि उसका भाई वास्तव में इतना बड़ा अपराधी है तो उसे जेल की सलाखों के पीछे रहना चाहिए—

लेकिन फिर विरोधी भाव टकराता है। उसके साथ उससे फायदा उठाने वाले क्या उसे जेल में रहने देंगे ? पारो ने यदि उसका साथ छोड़ दिया तो वह बिल्कुल बरबाद हो जाएगा। पहले ही मां-बाप के प्यार से वंचित हो चुका है। परिस्थितियों ने उसे अपराधों की दुनिया में धकेल दिया। पारो ने उसे ठुकराया तो बेचारा कहां जाएगा ? नहीं···नहीं··· वह उसे सही रास्ते पर लाएगी, वह हार नहीं मानेगी। सगर उसका भाई है, वह उसे बरबाद होते नहीं देख पाएगी।—उसकी जिन्दगी का क्या अर्थ है—क्या प्रयोजन है ? बस यही कि उसका विवाह हो जाए और वह अपना घर बसाकर बैठ जाए ? कदापि नहीं—उसके जीवन का भी कोई मिशन है—वह सगर को राह पर लाएगी—पंडित का साथ देगी—देश के लिए कुछ करेगी। शादी-ब्याह का बन्धन उसे नहीं बांध पाएगा। वह भैया से कह देगी कि वह शादी नहीं करना चाहती है। उसकी जिन्दगी इतनी सस्ती नहीं है। वह सगर से बात करेगी घर पहुंचने के बाद। वह भैया की पैरवी करेगी।—हां, उसे भी लड़ना होगा। अंधेरी राह पर चलने वाले को अपने प्राणों की आहुति देकर भी उस अंधेरी राह पर दीया जलाएगी।

रास्ते भर पारो इसी अन्तर्द्वन्द्व से घिरी रही। घर पहुंचते ही वह सगर पर बरस पड़ी—"किसने तुमसे कहा था, रुपया कमाकर लाओ ? क्या होगा इस पाप की कमाई का ?"

सगर चुप है—।

"हमारे घर में कोई झूठ नहीं बोलता था। तूने झूठ बोलना सीखा कहां से ? मुझसे कहता था—मेहनत का धन्धा करता हूं, रात-रातभर बाहर रहना, चोरियां करना, डाके डालना—बोल—क्या यह सच नहीं है ?"

"यह सब सच है।"

"क्यों किया तूने ऐसा ?"

"पता नहीं, कैसे होता चला गया। पहले सोचता था—शंकर काका का कर्जा चुकाना है। फिर सोचा वकील की फीस देनी है। कत्ल के मुकदमे में बरी होने के बाद लगा—रुपया बड़ी चीज है, उससे इन्सान

खरीदा जा सकता है, समाज के कायदे-कानून खरीदे जा सकते हैं, अदालत का न्याय खरीदा जा सकता है और एक ऐशो-आराम की जिन्दगी गुजारी जा सकती है। जिन्दगी मे भीख मांगकर रोटी खाई—मेहनत, मजदूरी करके रोटी खाई—फिर चोरी करके रोटी खाई। अपराध की दुनिया एक चिकनी गीली ढलान है—एक बार पैर फिसला तो फिर संभलता ही नही है।"

पारो फट पड़ी—"मैं देखती हू कैसे नही संभलता है ? अभी पारो जिन्दा है। आज तू इस घर मे कैद है, मैं मेहनत करूगी—मैं मजदूरी करूगी—तेरे पेट के लिए रोटी मैं कमा सकती हूं।"

सगर चुप रहा, वह इस तरह पकड़ा जाएगा, पारो के सामने इस तरह पर्दाफाश हो जाएगा, इसकी उसने कल्पना भी नही की थी।

शाम फिर से घिर आई। सगर का मन बाहर को भागता है—उसके पांव बाहर की ओर बार-बार बढते हैं। दरवाजे के पास कुर्सी पर पारो बैठी है। सगर को बाहर जाने की मनाही है। अन्दर ही अन्दर कुछ भडक रहा है, खून का दौरा बदन में रुकता सा लगता है। रगों मे दम नही, सारा बदन टूटता है। शायद इसीको आदत कहते हैं—शराब की लत, तम्बाकू का नशा।

पारो जानती है भैया परेशान है। शाम को उसने घर में रहना छोड़ दिया था। वह जानती है भैया लती हो गया है। उसने पुस्तक बन्द कर दी, भैया का मन बहलाने के लिए कुछ करना चाहिए। उसे मिस्सी रोटी पसन्द है—बेसन वाली, भरवां आटे वह चाव से खाता है—वह उसे बढ़िया भोजन बनाकर खिलाएगी।

सगर उदास पलग पर बैठा है। पारो उसे छेड़ती है—"क्यों रे सगर, बाहर की ठडी हवा खाने का मन है ? रुक, आज तेरे साथ पिक्चर चलूगी—सैकिंड शो। अभी खाना बनाती हूं। भोजन करके हम पिक्चर चलेंगे।"

पारो का उत्साह देखकर सगर मुस्कुराता है, उसे पारो का प्रस्ताव अच्छा लगता है।

पारो भजिया तल रही है, सगर पास बैठा गरम-गरम भ

, पारो उसे पंडित से हुई मुलाकात की पूरी कहानी सुनाती है।"
ी बतलाती है—शायद एक दो दिन में यहां आकर ठहरे।
सगर ने प्रेम से पारो के साथ बहुत दिन बाद भोजन किया। इसके
वह लोग पिक्चर चले गए।

रात को साढ़े बारह बजे दोनों घर वापस आए तो पंडित को दर-
जे के बाहर पड़े हुए तख्त पर विराजमान पाया।

पंडित ने बिना किसी संकोच के कहा—"तुम्हारे यहां मेहमानी
करने आना पड़ा।" फिर सगर की ओर देखकर कहा—"अरे इतना बड़ा
हो गया।"

तब तक पारो ने ताला खोलकर मकान खोला। शाम की दाल-
सब्जी ढकी रखी थी, रोटी कटोरदान में पड़ी थीं। पारो ने दाल-सब्जी
स्टोव पर गरम की। पंडित शायद बहुत थका था। उसने बहुत थोड़ा-
सा भोजन किया। पारो को क्या पता था कि उसने रातभर जागने की
तैयारी की है।

पारो ने पंडित का बिस्तर लगाने की बात उठाई तब पंडित को
ाना पड़ा—"रात को काम करता हूं, बहुत काम है। सारी रात में
। नहीं निपटता है।...बस दिन में थोड़ा-सा आराम कर लेता हूं।"

पंडित ने अपने लिए चटाई बिछा ली, अपना पुलन्दा और दोनों झोले
ास रख लिए।

पारो सामने वाले कमरे में चारपाई पर पड़ी टुकुर-टुकुर ताक रह
थी—'पंडित क्या काम करता है?'

पंडित ने ड्राइंग शीट फैलाई, पेन्ट्स निकालकर वह तरह तरह
रंग तैयार करने लगा। फिर उसकी तूलिका चल उठी, कागज र
लगा, पोस्टर तैयार होने लगा।...रात ढलती रही, पंडित की तू
दौड़ती रही, पोस्टर पूरा तैयार होते-होते पंडित चटाई पर लुढ़क ग

पारो को ऐसा प्रतीत हुआ शायद रातभर का थका-हारा
गिरकर सोने की चेष्टा कर रहा है। उसका शरीर निष्प्राण-सा
पड़ा था। वह उठे और उसको बिस्तर पर जाकर सोने को कहे य
पड़ा रहने दे? कोई भी निर्णय करने की स्थिति में वह नहीं थ

अनिश्चय के क्षण अधिक नहीं थे। पंडित चन्द ही मिनटों में उठकर बैठ गया। उसने घड़े से पानी निकालकर मुंह पर पानी के छींटे मारे। हाथों को फैलाकर भरपूर जम्हाई ली और पुनः चटाई पर जमकर बैठ गया। इस बार उसके हाथ में तूलिका नहीं थी, लेखनी थी। पंडित को इतना अधिक विचारमग्न उसने पहले कभी भी नहीं देखा था···किस कल्पना-सागर में डूब गया है पंडित ? क्या लिख रहा है ? सारा संसार जब निद्रा मैया की गोद में दुबका सो रहा है, यह व्यक्ति किस प्रेरणा से जाग रहा है ? पारो उस रात सो न सकी। पंडित लिखता रहा, उसने कई पन्ने लिखे और उनको क्रमानुसार रखता गया। फिर उनको पढ़ा, अशुद्धियों को दूर किया और एक लिफाफे में रखकर बन्द किया। उसके झोले में लिफाफे थे, उसे आश्चर्य हुआ जब उसने देखा कि पंडित का झोला नहीं भानमती का पिटारा था। उसने गोंद की शीशी निकाली। पोस्टर को भी अन्य अनेकों चित्रों और व्यंग्य चित्रों के साथ पैक किया। पैकिट बनाया, उस पर कोई पता लिखा और उसे भी लिफाफे के साथ संजोकर रख दिया।

पारो ने समझा पंडित का कार्य अब समाप्त हो गया है, रात के लगभग तीन बजे थे—लेकिन पंडित ने शायद रात के अंधेरे में न सोने की कसम खाई थी। उसने अपना झोला खोला, इस बार डायरी उसके हाथ में आई—पंडित डायरी लिख रहा था। पारो की समझ में आया कैसे मन शरीर और आत्मा को नियन्त्रित करके लिखा जाता है। संसार की मान्यताएं झूठी हैं—लेखक को वातावरण बनाना पड़ता है—। चाय नहीं···सिगरेट नहीं···शराब नहीं···कुछ नहीं, अन्तःप्रेरणा चाहिए और बिल्कुल कुछ नहीं। पारो का मन श्रद्धा से भर उठा। मन में नमन किया उसने अपने सामने बैठे इन्सान को—उसके कलाकार को—उसकी कला को···।

पारो ने भी डायरी लिखी थी लेकिन इतनी लम्बी नहीं। पंडित के लिखने का कोई अन्त नहीं है। उसका आक्रोश उसके मुखमंडल पर उभर आया था। पारो कुछ-कुछ समझने लगी—कैसे पंडित ने अपनी कंचन सी काया को घुलाया था ?

ा: की पहली किरण के साथ पंडित ने डायरी बन्द की—उसे
डाला और इस आशा में अपने आसपास दृष्टि डालकर देखने
के कोई तो अब जागेगा। पारो ने बिस्तर छोड़ दिया। पारो
के सामने खड़ी थी—सारी रात काम किया है ? पंडित आडम्बर-
न व्यक्ति है। बात को घुमाने की आदत नहीं है। पारो की बात
स्वीकार करता है—"हां सारी रात काम किया है—इसी प्रकार
या जाता है। जरूरी काम हैं, उन्हें छोड़ा नहीं जा सकता।"

"अच्छा, अब तो हो गया न। चाय बना दूं?"

"तू चाय बना तब तक मैं तैयार होता हूं।"

"अब कहां जाएंगे आप ?"

"बस, थोड़ी दूर एक मित्र का घर है, यह सामग्री दिल्ली भेजनी
है। इसके लिए उसको सौंपनी होगी।"

"मैं दे आती हूं, आप आराम कीजिए।"

"नहीं, यह काम स्वयं मुझे करना चाहिए। चाय पीकर मैं जाऊंगा
फिर आकर कुछ घंटों तक सोऊंगा।"

"मैं आपका बिस्तर लगाती हूं, पहले आप चाय पी लीजिए।"

"पारो, मेरा बिस्तर यही धरती है, यही चटाई। देश में कितने लोग
बे घरबार हो गए हैं, वह कहां सोते होंगे ? हम लोगों ने शपथ उठाई है
बिस्तर त्यागने की।"

"लेकिन कब तक...?"

"सुबह होने तक। हमारी सुबह की हमें प्रतीक्षा है।"

पारो चाय बना रही है।

पंडित के दिमाग में दुष्यन्तकुमार की एक पंक्ति दस्तक दे
है—

"कहां तो तय था चिरांगा हर एक घर के लिए
कहां चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए"

ऐसे कितने स्वर उसे बौखलाए रहते हैं।

चाय का प्याला एक ओर रखकर वह चल दिया। उसने
और व्यंग्यचित्र दोस्त को सौंपते हुए कहा—"यह सामग्री लेक

स्वयं जाएंगे। प्रेस का काम पूरा हो जाने पर वालंटियर्स के द्वारा उन्हें वितरित किया जाए। कोई सामग्री डाक से नहीं भेजी जाएगी। दिल्ली का संदेश लाकर मुझे दीजिए। तब तक मैं दो-चार दिन को भोपाल और इन्दौर का फिर एक चक्कर लगाऊंगा।

पंडित बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए चल दिया। कोई क्षण व्यर्थ गंवाने के लिए नहीं। वापस आकर पुन: एक बार वह चटाई पर लुढ़का और कम्बल ओढ़कर सो गया।

रात का अंधेरा घिरते-घिरते पंडित कहीं चला गया, अपना सामान भी अपने साथ ले गया।

फिर चार दिन बाद एक रात चोरों की तरह आया—कुछ देर पारो और सगर से परिवार के सदस्य की भांति आत्मीयता से बात की, भोजन किया और चटाई बिछाकर काम करने को बैठ गया। उसने पारो और सगर को भली भांति समझा दिया है कि उसका आना-जाना नितांत गुप्त रखा जाए। सगर उसके रहस्यमय व्यक्तित्व से निरन्तर प्रभावित हो रहा था…। पारो उसके काम में हाथ बटाना चाहती है लेकिन पंडित अपना काम स्वयं करता है। पारो से कहता है—"अपने कमरे में पढ़ो, परीक्षा की तैयारी करो…।" पारो अपने कमरे में पढ़ती है, सगर कैदियों की भांति पड़ा रहता है। अपने कमरे में कथा-कहानियां पढ़ता है मनोरंजन के लिए। पारो उसे एक क्षण को भी बाहर अकेला नहीं जाने देती। सगर को शहर में ही कोई धन्धा कराने की योजना बना रही है।

एक माह बीत गया। सगर के हाथ-पांव मचलने लगे—कैसे बाहर निकले घर से? ईश्वर ने शायद उसकी सुन ली। भोपाल से वकील साहब का पत्र आ गया। मुकदमे की पेशी पर सगर को बुलाया था। पारो सगर के साथ पंडित को भेजना चाहती है लेकिन उसे दिल्ली जाना है कोई आवश्यक मीटिंग हैं। सगर दो दिन में वापस आने का वायदा करके भोपाल चला गया।

५

रो तीन दिन से सगर की प्रतीक्षा कर रही है। भोपाल की
में पुलिस ने मुकदमा पेश कर दिया था। पेशी की सूचना
साहब ने भेजकर सगर को बुलाया था। सगर पेशी पर भोपाल
था। दो दिन में उसको वापस आ जाना चाहिए था।
आज चौथा दिन था, सगर के न आने से वह चिन्तित थी। पंडित
पार्टी की गुप्त बैठक में भाग लेने के लिए दिल्ली गया था। उसको
वापस आ जाना चाहिए था। पारो ने अखबार में पढ़ा था—दिल्ली
कुछ पोस्टर निकले हैं। एक सप्ताह के अन्दर देश के महानगरों की
दीवारों पर रातोंरात पोस्टर गुप्त रूप से चिपका दिए गए थे। जनता
को तानाशाहों से आगाह किया गया था, पोस्टरों के साथ ही साथ ढेर
सारा गोपनीय साहित्य जनता में वितरित किया गया था—दमन की
नीति क्यों आवश्यक नहीं है, अदालत के दरवाजे क्यों बन्द किए जा रहे
हैं, विचारों की अभिव्यक्ति पर पाबन्दी क्यों लगाई गई, प्रेस सैंसर का
उद्देश्य क्या है, सन्त और साहित्यकारों की गिरफ्तारियों के पीछे राज़
क्या है? इस साहित्य के द्वारा जनता को विस्तृत जानकारी दी गई।
जन आन्दोलन उभारने की चेष्टा की गई। किसी भयंकर विस्फोट की
आशंका से राज-सिंहासन फिर डोलने लगा।

पुलिस और गुप्तचर विभाग पागलों की भांति इस साहित्य के
सृष्टा की खोजबीन कर रही है। पोस्टर किसने बनाए, कलाकार कौन
है, विस्फोटक लेख किसने लिखे, जागरण के गीत किसने गाए? पुलिस
को उसकी आवश्यकता है। केन्द्रीय गुप्तचर विभाग से आस्था उठने
लगी। विशेष अनुसन्धान केन्द्र की स्थापना की गई। भूमिगत कलाकार
की खोज है उन्हें।

पारो जानती है, वह पोस्टर इसी कमरे में बनाया गया है, वह
भी यहीं इसी घर में लिखे गए हैं। उस डेढ़ पसली के इन्सान
तलाश में पुलिस और सम्पूर्ण गुप्तचर विभाग घूम रहा है।

पंडित क्यों नहीं आया ? उसे गिरफ्तार तो नहीं कर लिया पुलिस ने ?

दहलान की धूप सरकते-सरकते जीने तक आ पहुंची। संध्या आंचल लपेटने लगी···पारो घर खोले सारे दिन चटाई पर पड़ी रही···शायद भैया आए···शायद पंडित ही लौट आए। रात हो चली, कोई नहीं आया। पारो ने उठकर तुलसी चौरा पर दीया जलाया। हाथ जोड़कर प्रभु से प्रार्थना की—"सबकी रक्षा करना।"

फिर स्वयं चौंक पड़ी···मन पंडित के लिए प्रार्थना करता है। कौन है पंडित ? प्रश्न अनेकों बार मन में उठा है। गांव की पहचान, फिर वर्षों का अन्तराल। सब कुछ भूल गई थी वह। कभी-कभी सूने उदास क्षणों में मन को लगता था—दूर क्षितिज के उस पार से कोई उसे आवाज दे रहा है···वह पहचानने की चेष्टा करती है···यह स्वर किसका है···ढलते हुए सूर्य को उसने देखा है। रंगीन बादलों के पर्दे के पीछे उसे एक परछाईं दीखती है। कभी-कभी बादलों में एक आकृति उभरती है···वह चेहरा उसका चिरपरिचित चेहरा है—ऐसा क्यों होता है ? गाव की पहचान के बाद—उस रात उसने पुनः पंडित को देखा। इस बार तेजी से घटनाचक्र घूमा है। उसका साधिकार यहां आना··· इस घर को कर्मभूमि बनाना पारो को अच्छा लगा। इस बार तो अपना एक बड़ा झोला पंडित छोड़ गया है, उसमें भी वही लिखे लिखाए कागज, किताबें, डायरियां। पारो के मन का चोर जागा। समय व्यतीत करने के लिए क्यों न झोले की सामग्री खोली जाए। विचार टकराने के साथ-साथ उसने झोले की सामग्री को पलटना शुरू कर दिया—उसे तलाश थी डायरी की। सब कुछ छोड़कर उसने डायरियां निकाल लीं। तीन डायरी थीं। पारो कांपते हुए हाथों से एक डायरी के पृष्ठ पलटने लगी।

डायरी के पृष्ठों में भी पंडित के आक्रोशी पुरुष का चेहरा उजागर हो रहा था।

"नौकरी नहीं करूंगा, अपनी आत्मा को नहीं बेचूंगा। मेरी तूलिका मचल रही है, मानस मंथन को तूलिका से मुखर करूंगा। कल ही

त्यागपत्र दूंगा, अब गांव नहीं जाऊंगा। फिर तो गांव छोड़ना पड़ेगा ?···गांव का ताल अच्छा लगता है, रात को अलाव पर बैठना अच्छा लगता है, भोलेभाले गांव वालों को उनके अधिकार की बातें बताना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं। गांव वाले मुझे मानते हैं—मेरा बहुत कहना मानते हैं, गांव के लोग अच्छे हैं। पारो एक अच्छी लड़की है, उसमें प्रतिभा है···लेकिन परिवेश ? सब मोह त्यागना पड़ेगा। जिन्दगी एक मिशन है, सब कुछ पीछे छूट जाने दो, मुझे आगे बढ़ना है···मेरी पार्टी को आगे बढ़ना है। मैं कल ही त्याग-पत्र दूंगा।

प्रशांत"

तो पंडित का नाम प्रशांत है। पारो कितनी पगली है। गांव के लोग मास्टर होने से उसको पंडित बोलते थे—वह भी उनके साथ 'पंडितजी' बोलने लगी—फिर कब पंडित जी से वह सिर्फ पंडित हो गया। पारो जिसे एक भोलाभाला देहाती इन्सान समझती थी—वह कितना बड़ा कलाकार था—कितना महान् विचारक—इसका ज्ञान पारो को अब हुआ है। 'प्रशान्त' सागर की भांति गंभीर है। कितना अच्छा नाम है। अब वह कभी पंडित जी कहकर नहीं पुकारेगी प्रशान्त जी को। प्रशान्त का एक नया व्यक्तित्व उसके समक्ष उभरा था। प्रशान्त मास्टर नहीं ···'प्रशान्त कलाकार'···लेखक'।

डायरी के पन्ने पारो पलटती गई—

"पार्टी को धन की आवश्यकता है, लोगों ने चन्दा किया है—मैंने भी चन्दा दिया है। मैंने अपनी अंतिम पूंजी तक चन्दे में दे डाली है लेकिन इससे क्या होता है। काम महत्त्वपूर्ण है···उनकी प्रदर्शनी करूंगा, सब चित्रों को बेच दूंगा। फिर चित्र बनाऊंगा, रात-दिन काम करूंगा। जो भी काम मिलेगा वह करूंगा। मां सरस्वती के चरणों में बैठकर कुछ लिखूंगा।"

फिर चन्द पृष्ठों के बाद—

"रेणुजी की आज की मुलाकात नहीं भूलूंगा। कितनी छोटी-सी

मुलाकात थी। रातभर लिखते-लिखते थक जाता हूं। सुबह घूमना अच्छा लगता है, रातभर की थकान निकल जाती है। क्रिश्चियन कब्रिस्तान की ओर से यूनिवर्सिटी रोड पर चढ़ने में मजा आता है। उस दिन देखा लायब्रेरी के सामने रेणुजी की कार खड़ी थी, पास वाले अमलतास के पेड़ के नीचे रेणुजी एक सोंटी से अमलतास के फूल तोड़ने का प्रयास कर रही हैं, सोंटी मारते ही पीले-पीले गुच्छों वाले फूल से पीले मोती से दाने झर जाते थे—गुच्छा हाथ नहीं लगता।

मुझे देखते ही रेणुजी ने आवाज दी—'प्रशान्त जी नमस्कार।'

मैं समझ गया रेणुजी आसानी से नहीं छोड़ेंगी। ठिठककर खड़ा हो गया, दोनों हाथ जोड़ दिए।

रेणुजी बोलीं—'आप लम्बे हैं, यह अमलतास का गुच्छा तोड़ दीजिए।'

मैंने ढेर सारे फूल तोड़ दिए। रेणुजी फूलों के गुच्छों से लदी खड़ी थीं, मुस्कुराकर कहने लगीं—'मैंने आपका वह चित्र देखा है जिसमें आदिवासी बालाएं जंगल में लकड़ी के गट्ठर सिर पर लादे चली आ रही हैं। आप मेरा चित्र बनाइए इसी तरह फूलों के साथ। मुझे पूर्ण विश्वास है आपकी तूलिका से जो रंग भरे जाएंगे उनकी तुलना में यह ताजे अमलतास कुम्हलाए-से प्रतीत होंगे।'

मैंने कहा—'जो चित्र मन के परदे पर अपनी छाप छोड़ जाते हैं, वही कभी न कभी तूलिका से उभर आते हैं।'

रेणुजी का प्रश्न था—'आपने उन आदिवासी बालाओं को कहां देखा था?'

मैंने बात स्पष्ट करने की चेष्टा की—'वह तो मेरी जिन्दगी है, मैं एक मजदूर हूं, दिन-रात मेहनत करता हूं तब दो जोर की रोटी जुड़ती है। मेरी जिन्दगी के आसपास इसी प्रकार के दृश्यों की भीड़ है।'

रेणुजी मुस्कुरा दीं—'बेर और बबूल में जिन्दगी को उलझाकर रखा है। कभी ऐसा नहीं लगता कि रजनीगंधा की क्यारी के पास बैठें, स्वीट पीज की मादक गन्ध में डूब जाएं, नैस्टर्शियम के आकर्षक रंगों से अपनी तूलिका सजाएं…।'

मैंने उनकी बात काटते हुए कहा—'आप तो बहुत ही दिलचस्प बातें करती हैं, कभी बैठकर हम लोग बात करेंगे।'

'फिर कब मिलेंगे ?'

मैंने छोटा-सा उत्तर दिया—'कभी भी शीघ्र।'

शायद शीघ्र कहे बिना पीछा छुड़ाना असंभव था। मैं चल दिया लेकिन रेणुजी की बातें मन की दीवार पर कहीं अंकित हो गईं। सौन्दर्य कितना मादक होता है ? व्यक्तित्व का अपना एक आकर्षण होता है। रेणुजी सौन्दर्य और व्यक्तित्व की धनी हैं, वैसे भी धनवान हैं, कितने सामाजिक कार्यक्रमों में उनसे मिल चुका हूं। हर बार मुझसे बातचीत का बहाना ढूंढ़ती रही हैं। आज कहां से टकरा गई—खैर छोड़ो—रात बहुत हो गई है।"

पारो नितान्त अकेली है। वह एकाग्रचित्त होकर डायरियां पढ़ रही है। लेकिन यह क्या हुआ ? अचानक एक अव्यक्त वेदना उसे सालने लगी। वह रेणुजी कौन है ? उसकी जिज्ञासा बढ़ने लगी···रेणुजी के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में चंद ही शब्द लिखे थे···लेकिन प्रशान्त को बहुत अच्छा लगा होगा तब उसने इतना लिखा है। वह प्रशंसा में कृपण है। फिर कब मिली रेणुजी प्रशान्त को···कितनी बार मिली··· कहां-कहां मिली···उनकी पहली मुलाकात ने क्या गुल खिलाया ? पारो तिलमिला उठी···ज्यों-ज्यों डायरी के पन्ने पलटती गई उसका परिचय रेणुजी से बढ़ने लगा।

रेणुजी ने कौनसा मन्त्र फूंका था प्रशान्त पर ? प्रशान्त के मनोभाव स्पष्ट हैं डायरी में। नितांत ईमानदारी से लिखी गई डायरी। सब कुछ स्वीकार किया है प्रशान्त ने। यूनिवर्सिटी लायब्रेरी के सामने रेणुजी अमलताश के फूलों से लदे वृक्ष के नीचे उछल रही हैं—अमलताश पीले मोती से दाने झर रहे हैं—यह चित्र रातभर प्रशान्त के दिमाग में घूमता रहा—सपना भी देखा चौंककर घबराकर उठा—भोर होने में देर थी।···उसे लगा पहाड़ी की ओर से उसका बुलावा है, एक आवाज आती है उन उनींदीं पहाड़ियों से। प्रशान्त अपना बिस्तर छोड़कर उठ जाता है—अंधेरा झरने लगा है—प्रशान्त फिर भाग रहा है—

वही मोड़ क्रिश्चियन कब्रिस्तान वाला, वही चढ़ाई—प्रशान्त बॉयज़ हॉस्टल की ओर से उतरने वाले नाले को पार कर रहा है—बस एक मोड़ चढाई—दूसरा मोड़, फिर चढाई—फिर शीश उठाए खड़ा अमलनाश—शायद रेणुजी आज भी आएं—शायद न आएं। उन्होंने ही तो पूछा था फिर कब मिलेंगे। प्रशान्त का मन कहता है रेणुजी भी आएंगी—यूनिवर्सिटी से नेपाल पैलेस की ओर उतरने वाली ढलान इस रास्ते से पूरी दीखती है। रेणुजी की कार उसी रास्ते से आएगी—अभी कुछ-कुछ अंधेरा बाकी है लेकिन कार पहचानी जा सकती है। प्रशान्त का ध्यान उसी रास्ते पर है—वह अमलतास के नीचे पहुंच गया है। बरसात में बॉयज हॉस्टल की ओर से गिरने वाले नाले का जल झर-झराकर गिरता है—वह उस नाले के पास खड़ा होता था—उस स्वर को सुनता था। उसे लगता था कोई अदृश्य सुन्दर, अनिन्द्य सुन्दरी खिलखिलाकर हंस रही है—लेकिन अभी बरसात कहां है—यह स्वर उसी सुन्दरी का है—खिलखिलाकर हंसे जा रही थी रेणुजी। प्रशान्त तो किंकर्तव्यविमूढ़-सा खड़ा था। रेणुजी सामने खड़ी हंस रही थीं। प्रशान्त की गम्भीर मुद्रा देखकर रेणुजी ने हंसना बन्द कर दिया। रेणुजी ने कहा—'मुझे पता था तुम आओगे।'

'क्यों, ऐसा क्यों सोचा आपने ?'

'क्योंकि मुझे रातभर नींद नहीं आई, सोचती रही सुबह होगी मैं घूमने जाऊंगी—फिर तुमसे मुलाकात होगी—तुमसे फिर ढेर से फूल-तुड़वाऊंगी और अपने ड्राइंग रूम में सजाऊंगी···।'

'आपने ऐसा क्यो सोचा कि मैं मिल ही जाऊंगा ?'

'क्योंकि करवटें बदलने पर भी मुझे नींद नहीं आई और ऐसा लगता था तुम भागते हुए पहाड़ पर चढ रहे हो, मैं तुम्हारा इन्तजार कर रही हूं। तकलीफ हमेशा दोनो तरफ होती है। सच बतलाओ, रात क्या आराम से सोए थे ?' प्रशान्त को झूठ बोलना नहीं आता। वह कोशिश करे तो भी शायद झूठ नहीं बोल पाएगा। इसीलिए सच-सच कह डाला—'मुझे लगता था इस पहाड़ी की ओर से एक आवाज आ रही है—एक बुलावा मेरे लिए मुझे लगा, आप अमलतास के नीचे खड़ी हैं···

'अरे, मैं तो कब से खड़ी हूं—तुम्हें देखकर उस ट्री गार्ड के पीछे गई थी। देखो उस मोड़ के नीचे से तुम्हें आते हुए देख रही ...'

'इतनी दूर से पहचान लिया ?'

'तुम लम्बू हो न इसलिए।'

'आओ तुम्हारे लिए फूल तोड़ दूं।'

'सूरज उगने के बाद—अभी तो हम उस ओर घूमने चलते हैं।'

'कहां ?'

'उस ओर—जहां से सूरज उगेगा। वह ढलान बड़ी प्यारी है—ढाना की ओर जाने वाला रास्ता...'

'हां वह मुझे भी अच्छा लगता है।'

दोनों ढलान पर उतर रहे हैं—। रेणुजी के पर निकल आए हैं—पैर जमीन पर नहीं पड़ रहे हैं—वह उड़ रही हैं। मन हवा में तैर रहा है। वह प्रशान्त से कहती हैं—'मैं बहुत खुश हूं—इस ढलान पर भागने का मन करता है—आओ, हम दोनों साथ-साथ भागें'—रेणुजी प्रशान्त का हाथ पकड़े हैं—वह दोनों उस ढलान पर दौड़ रहे हैं—हंस रहे हैं—उनका मन बल्लियों उछल रहा है।"

और डायरी पढ़ते-पढ़ते पारो का मन डूबता गया—डूबता गया—कहीं कोई थाह नहीं है—पारो रो पड़ी।

...ऐसा क्यों होता है ? प्रशान्त कौन हैं मेरे ? उन्होंने किस मुझसे प्रणय निवेदन किया था। पागल पारो, प्रशान्त पर कब से अधिकार समझने लगी लेकिन हां, समय कौन-सा बन्धन है इस खेल रेणु को क्या समय लगा था—प्रणय निवेदन करना क्या आवश्य यह मेरे मन का अधिकार है। इस भावना का प्रदर्शन भी क्या है ? रेणु अपना खेल खेल रही है—मैं अपने तक सीमित हूं—प्रशान्त ने कभी रेणु का जिक्र नहीं किया। डायरी तो अभी भी हैं—जरूर कुछ न कुछ लिखते होंगे रेणु के बारे में—मैं पढ़ूंगी अभी तो दूसरी डायरी शेष है—इसके भी कुछ पृष्ठ शेष हैं।

पारो पुन: डायरी के पन्ने पलटने लगी।

—एक स्वर निरन्तर···रेणुजी के गति···और उनका प्यार प्रशान्त को पागल बनाता गया। प्रशान्त की पार्टी वाले नाराज हैं उसके आचरण से। उसको रेणुजी के चंगुल से निकालना चाहते हैं। प्रशान्त पहले के समान पार्टी को समय नहीं दे रहा है। देश की राजनीतिक गतिविधियां एक नया मोड़ ले रही हैं। सारे देश में क्रान्ति का नया बिगुल बज रहा है। प्रशान्त स्वयं चिन्तित है। कर्तव्य और भावना का द्वन्द्व युद्ध चलता है लेकिन रेणु जी बुरी तरह हावी हैं। गुण भी कितने हैं। अपने पिता के लाड़-प्यार में पली एकमात्र सन्तान। लक्ष्मी जी की कृपा तो उन पर है ही, सरस्वती का भी वरद हस्त प्राप्त है। प्रशान्त ने अपनी डायरी में लिखा है—रेणुजी को प्रभु ने सब कुछ उन्मुक्त हृदय से दिया है। सुन्दरी, पद्मिनी, सम्राज्ञी, भावुक स्वप्नशील कलाकार गायिका···लेकिन मैं भागना चाहता हूं। रेणुजी बहुत तेजी से मेरी ओर बढ़ रही हैं। रेणु जी का चुम्बकीय क्षेत्र इतना विशाल है। मेरी आत्मा कांपती है सोचकर। पार्टी के काम से उदयपुर जाना था। रेणुजी मिलीं और घोषणा की—दस तारीख को जन्मदिवस था उनका। इस बार बहुत धूमधाम से मनाने का इरादा था। लेकिन मुझे उदयपुर जाना था। रेणु ने आदेशात्मक स्वर में कहा था—आप नहीं जाएंगे। लेकिन पार्टी का काम कैसे टालता। मुझे जाना था, गया। लेकिन रेणुजी ने भी क्रोध में जन्मदिन न मनाने का फैसला कर लिया। उदयपुर तो चला गया लेकिन येन-केन प्रकारेण चेष्टा यह रही कि काम समाप्त हो और मैं वापस दस तारीख को सागर आ जाऊं। काम समाप्त किया। उदयपुर से मन्दसौर रातोरात ट्रक में लदकर आया, मन्दसौर से भोपाल और आखरी सफर भोपाल से सागर। शाम सूरज डूबते-डूबते सागर पहुंच गया। रेणु मुझे देखकर विश्वास नहीं कर सकी, कितनी नाराज थी। आज पहली बार अजीब-सा लग रहा है, यह सोचकर उस दिन कैसे-कैसे मनाया रेणु को। कैसे मौका पाकर वह मुझसे लिपट गई थी। मेरे वक्षस्थल में मुंह छुपाकर रोने लगी थी, मैंने प्यार से उसको थपकी देते हुए कहा था चलो तुम्हें नाव की सैर करा

, मैं तो कब से खड़ी हूं—तुम्हें देखकर उस ट्री गार्ड के पीछे
थी। देखो उस मोड़ के नीचे से तुम्हें आते हुए देख रही

तनी दूर से पहचान लिया ?'
तुम लम्बू हो न इसलिए।'
'आओ तुम्हारे लिए फूल तोड़ दूं।'
'सूरज उगने के वाद—अभी तो हम उस ओर घूमने चलते हैं।'
'कहां ?'
'उस ओर—जहां से सूरज उगेगा। वह ढलान बड़ी प्यारी है—
ना की ओर जाने वाला रास्ता…।'
'हां वह मुझे भी अच्छा लगता है।'
दोनों ढलान पर उतर रहे हैं—। रेणुजी के पर निकल आए हैं—पैर जमीन पर नहीं पड़ रहे हैं—वह उड़ रही हैं। मन हवा में तैर रहा है। वह प्रशान्त से कहती हैं—'मैं बहुत खुश हूं—इस ढलान पर भागने का मन करता है—आओ, हम दोनों साथ-साथ भागें'—रेणु जी प्रशान्त का हाथ पकड़े हैं—वह दोनों उस ढलान पर दौड़ रहे हैं—हंस रहे हैं—उनका मन बल्लियों उछल रहा है।"

और डायरी पढ़ते-पढ़ते पारो का मन डूबता गया—डूबता गया—कहीं कोई थाह नहीं है—पारो रो पड़ी।

"ऐसा क्यों होता है ? प्रशान्त कौन हैं मेरे ? उन्होंने किस दिन मुझसे प्रणय निवेदन किया था। पागल पारो, प्रशान्त पर कब से इतना अधिकार समझने लगी लेकिन हां, समय कौन-सा बन्धन है इस खेल में ? रेणु को क्या समय लगा था—प्रणय निवेदन करना क्या आवश्यक है यह मेरे मन का अधिकार है। इस भावना का प्रदर्शन भी क्या आवश्य है ? रेणु अपना खेल खेल रही है—मैं अपने तक सीमित हूं—ले प्रशान्त ने कभी रेणु का जिक्र नहीं किया। डायरी तो अभी भी लि हैं—जरूर कुछ न कुछ लिखते होंगे रेणु के बारे में—मैं पढ़ूंगी—ले अभी तो दूसरी डायरी शेष है—इसके भी कुछ पृष्ठ शेष हैं।

पाये पुन: डायरी के पन्ने पलटने लगी।

—एक स्वर निरन्तर···रेणुजी के प्रति···और उनका प्यार प्रशान्त को पागल बनाता गया। प्रशान्त की पार्टी वाले नाराज हैं उसके प्राचरण से। उसको रेणुजी के चंगुल से निकालना चाहते हैं। प्रशान्त पहले के समान पार्टी को समय नहीं दे रहा है। देश की राजनीतिक गतिविधियां एक नया मोड़ ले रही हैं। सारे देश में क्रान्ति का नया बिगुल बज रहा है। प्रशान्त स्वयं चिन्तित है। कर्तव्य और भावना का द्वन्द्व युद्ध चलता है लेकिन रेणु जी बुरी तरह हावी हैं। गुण भी कितने हैं। अपने पिता के लाड़-प्यार में पली एकमात्र सन्तान। लक्ष्मी जी की कृपा तो उन पर है ही, सरस्वती का भी वरद हस्त प्राप्त है। प्रशान्त ने अपनी डायरी में लिखा है—रेणुजी को प्रभु ने सब कुछ उन्मुक्त हृदय से दिया है। सुन्दरी, पद्मिनी, सम्राज्ञी, भावुक स्वप्नशील कलाकार गायिका···लेकिन मैं भागना चाहता हूं। रेणुजी बहुत तेजी से मेरी ओर बढ़ रही हैं। रेणु जी का चुम्बकीय क्षेत्र इतना विशाल है। मेरी आत्मा कांपती है सोचकर। पार्टी के काम से उदयपुर जाना था। रेणुजी मिलीं और घोषणा की—दस तारीख को जन्मदिवस था उनका। इस बार बहुत धूमधाम से मनाने का इरादा था। लेकिन मुझे उदयपुर जाना था। रेणु ने आदेशात्मक स्वर में कहा था—आप नहीं जाएंगे। लेकिन पार्टी का काम कैसे टालता। मुझे जाना था, गया। लेकिन रेणुजी ने भी क्रोध में जन्मदिन न मनाने का फैसला कर लिया। उदयपुर तो चला गया लेकिन येन-केन प्रकारेण चेष्टा यह रही कि काम समाप्त हो और मैं वापस दस तारीख को सागर आ जाऊं। काम समाप्त किया। उदयपुर से मन्दसौर रातोंरात ट्रक में लदकर आया, मन्दसौर से भोपाल और आखरी सफर भोपाल से सागर। शाम सूरज डूबते-डूबते सागर पहुंच गया। रेणु मुझे देखकर विश्वास नहीं कर सकीं, कितनी नाराज थीं। आज पहली बार अजीब-सा लग रहा है, यह सोचकर उस दिन कैसे-कैसे मनाया रेणु को। कैसे मौका पाकर वह मुझसे लिपट गई थी। मेरे वक्षस्थल में मुंह छुपाकर रोने लगी थी, मैंने प्यार से उसको थपकी देते हुए कहा था चलो तुम्हें नाव की सैर करा

हम लोग पहली बार साथ-साथ नाव पर बैठे। मैं नाव चला रहा मोटर स्टैंड से पुलिस ट्रेनिंग कालेज और फिर बरियाघाट, ...ऊ टौरी···पूरी झील घूम डाली। रात का एक बज गया लेकिन ...गी का एक महत्त्वपूर्ण निर्णय सामने आ गया। उस दिन डायरी ... लिख पाया। दो बजे घर वापस आया था। आज भी थक गया —आज नींद भी अभी से आने लगी है। काम बहुत बाकी है···डायरी ... एक महत्त्वपूर्ण अंश बाकी है। निर्णय वाली बात बाकी है···लेकिन आज सोऊंगा। कल रेणु से खुलकर बात करूंगा। फिर मेरा अन्तिम निर्णय होगा। बात गंभीर होती जा रही है···बाई रेणु···मैं सोने जा रहा हूं।

कौन-सा निर्णय था जिसके लिए प्रशान्त इतना चिन्तित था ? क्या बात हो गई ? पारो ने डायरी के पृष्ठ पुनः पलटे। डायरी १४ तारीख को लिखी गई थी। फिर तीन दिन कुछ नहीं लिखा गया। १८ सितम्बर की डायरी पढ़ने के पहले ही किसी भावी आशंका से पारो का मन घबराने लगा। १८ सितम्बर की डायरी बहुत लम्बी थी—

हिन्दी विभाग में 'समकालीन कथा साहित्य' के संबंध में एक 'विचार-गोष्ठी थी। रेणु मेरे लिए भी एक निमन्त्रण-पत्र ले आई थी। गोष्ठी में बहुत मजा आया। एक आदमी के कितने रूप हो सकते हैं 'आदमी सड़क का', 'आज का आदमी', 'आम आदमी', निम्न मध्यव... या निम्न वर्ग के औसत आदमी को ही हीरो बनाकर समकाली... साहित्य के सृजन पर विशेष जोर दिया जा रहा था। संघर्षशी... शोषित, दलित, बेरोजगार, महानगर, नगर या कस्बे के आदमी... कहानी पर विशेष जोर था। रूमानी कहानियों की खिल्ली उड़ा... ऐतिहासिक साहित्य की ओर किसीने ध्यान ही नहीं दिया। यथ... नाम पर दायरे सिकुड़ते जा रहे हैं। अन्त में जब अध्यक्ष मह... समकालीन कथा साहित्य पर सामान्य पाठक की राय जाननी च... रेणु उठकर खड़ी हो गई। उसने पूरी गोष्ठी धो डाली। उसने ...ी निर्भीक स्वर में कहा—'समकालीन कथा-साहित्य को आप... ... अपनी नेतागीरी कहां तक चलाएंगे।

नेतागीरी में आप अच्छे साहित्य का सृजन नही होने देते । मैं गुट विशेष की पत्रिकाओं में प्रकाशित कथा-साहित्य पढ़ती हूं । अधिकांश कहानियां मन में ऊब पैदा करती हैं । दर्जनों कहानियां तो पूरी पढ़ी नही जा सकीं, दर्जनों कहानियां पढ़ने के बाद एक भी कहानी याद नही रहती है । आम आदमी के नाम पर बदहवास पसीना पोंछता हुआ, पंक्चर साईकिल घसीटता हुआ, लोहा पीटता हुआ, तांगा चलाता हुआ, चना मूंगफली बेचता या गैस के गुब्बारे बेचता हुआ आदमी आपके लिए कहानी का विषय बन सकता है तो आलीशान कोठी में रहने वाले आदमी की जिन्दगी का कोई अंश कथावस्तु क्यों नहीं बन सकता । यथार्थ के नाम पर हर बार कहानी में मक्खी भिनके, पसीने पर धूल की पर्त जमे, कपड़े फटकर तार-तार हो जाएं और रसोई में खाली बर्तन खनकें और मकड़ी के जालों से मढ़ी, झरते हुए चूने वाली दीवार पर बैठ छिपकली के मुंह में दिखाया गया कीड़ा सामान्य पाठक कब तक सहन करेगा । पाठक अब मनोरंजक सस्ता पाकेट बुक साहित्य पढ़ता है, सस्ता कथा-साहित्य खरीदता है और जासूसी कहानियों से अपना मनोरंजन करता है । जब से यह नये-नये आन्दोलन चलाए गए हैं, मेरी जानकारी में संसार श्रेष्ठ साहित्य की तुलना में कोई सृजन नही हुआ । कहानी वह है जो मन को भाए और जो अच्छी लगे । साथ-साथ समकालीन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करे अथवा किसी सामयिक स्थिति का चित्रण करे । समस्या 'आम आदमी' की ही नही है, हर वर्ग के आदमी की है । समाज मात्र सड़क छाप आदमी से ही नही बनता है उसके सदस्य और भी वर्गों के लोग हैं । आम आदमी के लिए नारे बुलन्द करने वाले लेखक शाम को काफी हाऊस में बैठकर आने वाली रातों की रंगरेलियों की योजना बनाते हैं, बढ़िया ह्विस्की पीते हैं, महगी सिगरेट पीते हैं । कहानी आम आदमी की लिखते हैं और दिमागी ऐयाशी में उनकी हीरोइन के कपड़े परियों जैसे सफेद होते हैं । यह एक नाटक है, यह एक बेहूदा लेख है, यह व्यर्थ की नेतागीरी है । आम आदमी की नई कहानी के नाम साहित्य को नष्ट मत करो । आज का सामान्य पाठक समकालीन कथा-साहित्य से संतुष्ट नहीं है और साहित्यिक मठा-

आचरण से नाराज है। मैं एक और सवाल उछालती हूं—मैं
री हूं, निश्चित रूप से उस वर्ग की नहीं जहां से पात्र छांटकर
की होड़ आप लगाए हैं, क्या मुझे पात्र बनाकर कोई कहानी नहीं
जा सकती है? क्या मेरे समान पात्र अब से पूर्व के साहित्य में
थे? क्या वह साहित्य सारे संसार में नहीं पढ़ा गया है और नहीं
हा गया है? धृष्टता के लिए क्षमा। ये मेरे अपने विचार हैं।
चारों की अभिव्यक्ति पर कोई पाबन्दी नहीं है।'

सभागृह तड़ातड़ तालियों से गूंज उठा। बहुत से चेहरों पर आक्रोश
की रेखाएं उभरीं, बहुत-सी मुट्ठियां कसीं, दांत भींचे गए। रेणु मुझको
लेकर समागृह के बाहर आ गई।

रेणु रोष में थी। दूसरा प्रश्न उसने मेरी ओर उछाल दिया।
मुझसे बोली—'प्रशान्त, तुम भी आम आदमी की नकल मार रहे हो,
कब तक यूं ही ट्रकों पर लदकर सफर करोगे और बसों में धक्के
खाओगे? इस संबंध में पापा ने मुझसे बात की थी। उनका सुझाव है
कि तुम दिल्ली या बाम्बे में एक बड़ा भारी कामर्शियल आर्ट सेन्टर
खोलो। इन्टीरियर डैकोरेशन का बिजनिस भी अच्छा है। दुकानों के
बोर्ड कब तक पेन्ट करोगे? पिक्चर टाकीज के बैनर्स कब तक
बनाओगे? जिन्दगी में आगे बढ़ना है तो यथार्थ का ढोंग छोड़ो, कला,
और साधना वाली भावुक बातें बन्द करो। पापा की बात मान लो।
अच्छा बिजनिस जमा लो। पूंजी पापा लगाने को तैयार हैं। फिर हमारी
शादी हो जाएगी।'

अब मेरे आक्रोश की बारी थी। मैंने बताया—'रेणुजी मे
जिन्दगी का एक विशेष ध्येय है। मेरी अपनी विचारधारा है। मैं
पार्टी का सदस्य हूं, उसका कार्यकर्त्ता हूं, मुझको अपनी जिन्दगी के ब
रास्ते पर चलकर अपना लक्ष्य प्राप्त करना है। बैनर्स या बोर्ड ब
जीविका अर्जित करने के लिए आवश्यक है लेकिन अपना अधिकांश
ही मैं अपनी कला को और अपनी पार्टी को देता हूं। दिल्ली या
जाकर यह सब छूट जाएगा। सिर्फ व्यवसाय रह जाएगा।
व्यापारी बनना नहीं चाहता।'

रेणु ने कितना साफ-साफ कहा था—वह इस टीन टप्पर वाले मकान मे नही रह पाएगी—वह बर्सों में यात्रा नहीं कर पाएगी। वह रसोई में रोटी नही पका पाएगी। उसे बंगला चाहिए, कार चाहिए, नौकर चाहिए। उसे सड़क छाप आदमी नही चाहिए…।

मैं सड़क छाप आदमी हूं…मैं एकदम से फटीचर आदमी हूं। मैंने अपना अन्तिम निर्णय रेणु को सुना दिया—मेरे जीवन के सिद्धान्त और जीवन का लक्ष्य कुछ और है…। मैं उसकी जिन्दगी से हट जाऊंगा, मैं उसकी जिन्दगी से जा रहा हूं। अन्यथा भी पार्टी के हैड आफिस से मेरा बुलावा आया है। कल एक पत्र रेणु को लिखूंगा।…अलविदा रेणु…मैं जा रहा हूं…हो सके तो मुझे माफ कर देना।

—प्रशान्त

यही कहानी का अन्त है—आगे डायरी में पार्टी की बातें हैं, जिन्दगी के संघर्ष की बातें हैं। कला और साधना की बातें हैं…रेणु का कहीं नाम नहीं है। पारो ने एक गहरी सांस खींची। उठकर मटके में से पानी निकालकर पूरा गिलास एक सांस में चढ़ा गई। बहुत रात हो गई थी। सगर नहीं आया। प्रशान्त भी नही लौटा।

६

सगर पेशी पर भोपाल गया था। पेशी के बाद ही बाटू से भेंट हो गई। उसे इसी बात का डर था। सगर बाटू से डरने लगा है। बाटू ही ने सबसे पहले गुरुमन्त्र दिया था। भीड़-भरे प्लेटफार्म पर, रेलवे के टिकटघरों की लम्बी कतारों में, मेले की बड़ी-बड़ी भीड़ों में उसने बाटू के ही साथ जेबें काटी थीं—फिर चलती हुई रेलगाड़ी के डिब्बों से मुसाफिरों का सामान चुराया था…। बाटू ही जीवन में पहली बार उसे

के कोठे पर ले गया…बाटू ने ही उसे शराब पीना सिखाया था।"
नपुर में नगमा जान के कोठे पर जब शबनम से उसकी पहली
कात हुई, उस दिन भी बाटू उसके साथ था। बाटू ही उस शाम
उस कोठे पर ले गया था इसीलिए वह बाटू से डरने लगा है।

उस शाम से ही उसकी जिन्दगी में वह खतरनाक मोड़ आया था।
बनम संसार की सामान्य वेश्याओं की भांति नहीं थी…। वह डेरे
ाले कलाकार के रूप में कोठे पर बैठती थी। दूर-दूर से बड़े-बड़े
धनाढ्य व्यक्ति उसका मुजरा सुनने बुरहानपुर आते थे। सगर उस दिन
कुछ उदास था—। जब कभी उसे अपने घर, खानदार या गांव की याद
आती है, वह उदास हो जाता है। उसे पता है जिस रास्ते पर वह आगे
बढ़ा है वह ठीक नहीं है। जब-जब वह चोरी करता है उसका मन उसे
धिक्कारता है। कभी-कभी मन विद्रोह करता है…'अब वह चोरी नहीं
करेगा।' फिर बाटू उस्ताद आते हैं—गैंग के लोग आते हैं, उसे समझा
बुझाकर ले जाते हैं। कभी-कभी उसे अबूझी वेदना सालने लगती है,
एक अदृश्य उन्माद उस पर हावी हो जाता है—वह लम्बी-लम्बी
यात्राओं पर निकल जाता है।

उस शाम भी वह बहुत उदास था। बाटू उसे शबनम का मुजरा
सुनाने को ले गया था। उसे लगा कि शबनम बुझी हुई शमां का धुआं
है, उसकी बोलती हुई आंखें, लगता था अभी रो पड़ेंगी। आवाज क
सांज हजारों समन्दरों की गहराई लिए हुए था। जल से भरे हुए बादल
को जब होले से पुरवा धकेल देती है तब रिमझिम फुहार धरती
भिगो देती है और धरती से उठी सौंधी खुशबू सबका मन मोह लेती
शबनम महफिल में उसी अन्दाज से आई—सबके दिलों में छींटे प
एक खुशबू ने सभी को पागल बना दिया। शबनम घुटना त
बैठी…सगर को लगा सांध्य-गगन का सप्त रंगी बादल पर्वत की
पर एक घड़ी विश्राम करने को ठहर गया है। सारंगी के स्व
लगे—तबले पर थाप पड़ी, शबनम ने अलाप ली, सगर को लग
के ताल वाले दलदल को वासन्ती हवा ने छेड़ा है—एक संगीत

गया है, चनदन के चिकने पात झर रहे हैं। शबनम ने पहली बार एक गीत गाया था—फिर उसने और भी जाने क्या-क्या गाया था। सगर बेसुध सा सुनता रहा। संगीत समाप्त हुआ, सगर की तन्द्रा टूटी। वह शबनम से मिलने को आतुर था···बाटू ने कोशिश भी की थी···लेकिन बहुत मुश्किल था। सगर को लगा शायद बहुत पैसा चाहिए उससे मिलने के लिए···। फिर दौलत कमाने का भूत सवार हो गया सगर के सिर पर। नये सिरे से जैसे कोई व्यापारी अपना व्यापार जमाता है—वैसे ही सगर ने योजनाबद्ध तरीके से काम शुरू कर दिया। उसने बड़े गैंग में शामिल होकर बड़ा काम सीख लिया। मालगाडियों के पहियों में बाल बेरिंग चुराने वाला सगर पूरी की पूरी वैगन काटने लगा। उसे रुपया चाहिए था। दो-तीन दिन काम न करे तो हाथ-पाव फड़कने लगते हैं। एक उन्माद उसे घेर लेता है, मन में एक तूफान-सा उठता है और वह रेलवे यार्ड की ओर भागता है। चलती हुई मालगाड़ियों के नीचे लटक जाता है। पारो की आवाज उसे सुनाई देती है—भैया वापस आ जाओ। तभी चिलमन के पीछे शबनम की तस्वीर डोल जाती है—उसकी आंखों में एक इशारा है, वह शायद सगर को मूक निमन्त्रण देती है। सगर भी उससे मिलना चाहता है, यही सोचकर उसमें फुर्ती आ जाती है, उसके हाथ-पांव चुस्त हो जाते हैं, औजार काम करने लगते हैं, वैगन का लोहा कटने लगता है, माल टपकने लगता है। सगर का धंधा चल निकला। रुपयों का ढेर लगने लगा। बन्द दरवाजे खुलने लगे··· शबनम के कोठे पर उसका इन्तजार होने लगा—शबनम कुछ ही दिनों में सगर की शम्मो बन गई।—सगर ने समझ लिया—दुनिया में दौलत बड़ी चीज है···।

उसे वे दिन याद हैं जब वह सागर से फरार होकर भागा था। उस जिंदगी की सारी शामें झुग्गी-झोंपड़ों और फुटपाथों पर बिताई थी···उसके पुराने संगी साथी आज भी वहीं पड़े हैं। उनका दर्द आज भी उतना ही जवान है—आज भी वह रोटी के लिए उतने ही मोहताज हैं, उनकी याद सगर को उस ओर ले जाती है···वह उनका मसीहा बनकर जाता है। वह उन पर दोनों हाथों से रुपया लुटाता है। अभी

उन झोंपड़ियों में अपनी रात काट देता है। उनके स्वर में स्वर मिला र गाता है···उसे ये सब अच्छा लगता है। उसे मुर्दों की यह बस्ती अच्छी लगती है। उसने कुछ मुर्दों से दोस्ती पाल रखी है।

जब-जब मन भटकता है वह शबनम से मिलने बुरहानपुर की ओर भागता है। बाटू ने सारी रात रेलवे लाइन के किनारे वाली झुग्गियों में बिताई थी। वह जानता था—रमुआ सगर का दोस्त था, वह कई दिनों से बीमार था। सगर की याद बराबर करता रहा। शाम उसने बहुत ताड़ी पी—शायद जान-बूझकर उसने मौत को दावत दी थी। रमुआ ताड़ी पीते-पीते चल बसा···। सुबह मुर्दों की बस्ती में उसके कफन-दफन की बात चलने लगी। बाटू को पता था—आज सगर की पेशी है, वह कचहरी आएगा। बाटू सीधा कचहरी की ओर भागा···दुर्भाग्यदश सगर उसे लगभग तीन बजे टकराया। रमुआ की मौत का समाचार सुनकर बाटू के साथ सगर झुग्गी-बस्ती की ओर भागा—लेकिन तब तक सब कुछ समाप्त हो चुका था। रमुआ का पार्थिव शरीर अग्नि में जलक धूल में मिल चुका था। सगर ने उस धूल को माथे से लगाया, बिल बिलखकर रोया अपने दोस्त की याद में···। शाम भर बाटू के स भटकता रहा और शराब पीता रहा···वह इस जिंदगी से थकने लगा इसलिए बाटू को देखकर डर जाता है। वह जानता था बाटू गम करने के लिए उसे किसी नई जगह ले जाएगा लेकिन सगर को देखकर बाटू का साहस नहीं हुआ। उसने सगर के सामने प्रस्ता रखा। सगर के ही अनुरोध पर बाटू ने उसे अकेला छोड़ दिय भटकता-भटकता सगर रेलवे स्टेशन जा पहुंचा। उसे एक बा शब्बो की आवाज सुनाई दी। शब्बो को उसका इन्तजार होग दिन से नहीं गया है वह। उसे बुरहानपुर जाना होगा, शब्बो है···। पारो भी उसका इन्तजार कर रही होगी, फिर उसे कैद फिर पाबन्दियां लगाएगी···यह सब कुछ उससे नहीं होगा। पागल बना रखा था···उसे कोई नहीं रोक सकता है। व जाएगा···।

ट्रेन मे उसे बर्थ मिल गई लेकिन नीद नही आई। होशंगाबाद, हरदा, इटारसी स्टेशन निकल गए। रात ढलती रही। पंजाब मेल भागता रहा, सगर जागता रहा—रमुआ उसका दोस्त था। रमुआ की पहली मुलाकात, रेलवे लाइन के किनारे बीन का जादू भरा स्वर, उसकी मुफलिसी, उसकी दोस्ती, उसका प्यार, उसके जीवन का दर्शन, सब कुछ सगर को याद आता रहा।—कितनी बार वह रमुआ के कंधे पर सिर रखकर रोया था। कितनी रातें उसने रमुआ के झोंपड़े में गुजारी थी। दूर-दूर तक बसी उन सुनसान बस्तियों के अंधेरे में सगर का मन भटकता रहा। ताड़ीघर में ताड़ी पीते-पीते रमुआ चल बसा…उसका कोई घर-बार नही, कोई परिवार नही, अकेला रमुआ किसके लिए जीता? क्यो जीता? किसको उसकी जरूरत थी? बस्तीवालों को, समाज को, देश को? किसको उसकी जरूरत थी? उसका जीना क्या अर्थ रखता है? सगर मरेगा तो पारो रोएगी, शायद शबनम भी रोए? हम सब क्यों जिंदा हैं? इतना बड़ा देश, इतनी आबादी, इतनी भुखमरी, कीड़े-मकोड़ों की तरह बिलखते हुए इंसान, भूखे नंगे इंसान। उनकी जिंदगी का क्या मकसद है? सगर सोचने लगा—? जब-जब यह सवाल उठता है वह उलझता चला जाता है। इस बार वह पंडित से यह प्रश्न करेगा। ऐसे कितने ही सवाल उसे परेशान करते हैं। उसे कोई ऐसा आदमी चाहिए जो उसके सवालो का उत्तर दे।…रात ढलती रही, सगर का मन दूर-दूर तक भटकता रहा। बुरहानपुर पहुंचते-पहुंचते उसके प्राण निचुड़ गए। शराब के नशे का उतार उसके शरीर के अंग-अंग को तोड़ रहा था। मन की उदासी ने उसकी नस-नस को मसल डाला था। रेंगता-लड़खड़ाता बहुत परेशान-सा वह शब्बो के कोठे तक पहुंचा।

शब्बो उसके सामने परेशान-सी खड़ी थी। उसने सगर को नशे में देखा था। उसने सगर को परेशान भी देखा था लेकिन इतना टूटा हुआ कभी नहीं देखा था।

शब्बो ने मसनद के सहारे सगर को बिठाया, ठंडा पानी लेकर आई। सगर ने पानी पिया और एक गहरी सांस ली।

"क्या हुआ है तुम्हें ? शब्बो पूछ बैठी ।

"मन उदास है ।"

"क्यों ? उदास तो पहले भी आपको देखा है—लेकिन इस हाल में नहीं ।" शब्बो ने उंगलियों से सगर के उलझे हुए बालों को सहलाते हुए कहा । सगर ने शब्बो को उदास होते देखकर कहा—"आओ, हम कुछ और शराब पिएं । अभी रात बाकी है, इन सवालों में कहां तक उलझेंगे? आज रमुआ मरा है, कल बाटू मरेगा, परसों मैं मर जाऊंगा ।"

"हाय अल्ला—ये तुम्हें क्या हुआ है आज ! रमुआ कौन था ? कैसे मर गया ?" शब्बो ने घबराकर पूछा ।

"रमुआ मेरा गरीब दोस्त था । वह मुझे प्यार करता था । उसको गरीबी और तन्हाई ने मिलकर मार डाला । लगता है मैं भी थक गया हूं । जिंदगी का सफर मुश्किल लगता है..." पलकें झपकाते हुए बुदबुदाते स्वर में सगर ने कहा ।

शब्बो ने इतना ज्यादा उदास सगर को कभी भी नहीं देखा था । खिड़की के बाहर बूढ़ा और मरियल चांद हांफ रहा था । शब्बो ने सगर का सिर अपनी गोद में रख लिया, उसे बच्चों की भांति दुलारते हुए बोली—"सो जाओ सगर, थोड़ी-सी रात बाकी है, तुम थके हुए हो, तुमको शराब नहीं पीने दूंगी ।"

"पारो भी यही कहती है । शराब नहीं पीऊंगा तो नींद नहीं आएगी ।"

"तुमको एक बेहद हसीन गजल सुनाती हूं । मैं दिलरुबा छेड़ूंगी । तुमको नींद आ जाएगी ।"

"नहीं शब्बो, यह सही है कि तुम्हारी गजल मुझे अच्छी लगती है । तुम्हारी महफिल के लिए बेताब रहता हूं । लेकिन आज का यह माहौल ऐसा ही रहने दो—बस तुम मेरे पास रहो ।"

"लगता है जाने वाला आपका बहुत अजीज दोस्त था !"

"हर मुफलिस मेरा अजीज है, हर मजबूर इंसान मेरा हमसफर है । शायद तुमसे भी दोस्ती हो गई है । तुम क्या अपनी मर्जी से इस कोठे पर आई थीं ?"

"नहीं सगर, बहुत मजबूरी में आई थी—बहुत लम्बी कहानी है। कभी कोई ऐसा नहीं मिला जो मेरे दिल का हाल पूछता। आज तुमने यह बात क्यों उठाई ?"

"पहली बार जब तुमसे मिला था तब लगा था तुम कोठों के लिए नहीं बनी थी। तुम्हें शायद परिस्थितियों ने वेश्या बना दिया जैसे मुझे वक्त ने चोर और कातिल बना दिया···। बाप का साया उठा, मा ने साथ छोड़ दिया। अब एक तरफ पारो है और दूसरी तरफ तुम। पारो मेरी असलियत पहचान गई है—इसलिए उसकी नजरों से बचता हूं—दूर भागता हुआ फिर रहा हूं उससे। खुद की नजरों में गिर गया हूं—इसलिए अब किसी काम में मन ही नहीं लगता। जहां अपने जैसे लोग मिल जाते हैं वहां वक्त कट जाता है। शब्बो, बहुत नजदीक से देख लिया जिन्दगी को। सच, बहुत घिनौनी चीज है···। तुम जानती हो अपनी शाम शहर से दूर खानाबदोशों की बस्तियों में कटती है। वह बस्ती जहां हर इन्सान टूटा हुआ है, हर जिन्दगी घायल है, रमुआ की मौत पहली मौत नहीं है, वहां तो हर रोज हर घड़ी मौत का साया मंडराता है। रमुआ की झुग्गी में मुझे अच्छा लगता था, इसलिए रात मैं अक्सर उसके साथ बिताता था। बड़ा प्यारा आदमी था। बचपन में अनाथ। अनाथालय में परवरिश पाया हुआ इन्सान। बचपन में ढोल और बांसुरी बजाकर अनाथालय के लिए शहरों-शहरों, मुहल्लों-मुहल्लों में भीख मांगता रहा। सितारों का खेल समझती हो ?"

"क्या होता है सगर सितारों का खेल ?"

"पंडित लोग गृह-नक्षत्रों की बात करते हैं। मैं भी जाति का ब्राह्मण हूं। लेकिन बचपन से अपनी जिन्दगी अपने हिसाब से जी है, अपने को जो रंग भाते हैं उनसे अपनी भोर रंगता हूं, अपनी संध्याओं को सजाता हूं। इसीलिए ग्रह नक्षत्रों के मेल को सितारों का खेल कहता हूं। कुछ असर जरूर होता है सितारों का। रमुआ की शिक्षा अनाथालय वाली थी—जिन्दगी-भर अनाथालय के लिए भीख मांगता रहा। लेकिन मन कलाकार का पाया था। बांसुरी मन से बजाए तो पत्थर का दिल पिघलने

रों वाली बीन झील के किनारे बैठकर बजाता था, लहरें नाचने थीं, हवाएं झूमने लगती थीं, डूबता सूरज क्षितिज पर थम जाता सके संगीत में जादू था। उसका कलाकार मन नशा मांगता था। भी सामान्य उसे अच्छा नहीं लगता था—मालूम नहीं कब उसे ब पीने की लत लग गई। इसीलिए अनाथ:लय वालों ने उसे निकाल ा। शादी-ब्याह में बाजा बजाने वालों के साथ वह बाजे बजाने लगा। राब के नशे में धुत होकर बाजे बजाना उसको, अच्छा लगता था। उस ात रमुआ किसी बारात के साथ बैंड में गया था। उसके साज की आवाज पर बाराती लोग नाचे थे, उसे खूब शराब पिलाई थी, क्लब के पीछे रेलवे लाइन के किनारे से बांसुरी की पागल बना देने वाली धुन ने मुझे उस ओर आकर्षित किया। सिर पटरियों पर टेके और गिट्टओं पर पड़ा रमुआ बांसुरी बजा रहा था—मैंने उसे पहली बार उस दिन देखा था। मैं चौंक पड़ा—कैसा बेहूदा आदमी है—सारी दुनिया छोड़ कर यहां पड़ा है। फिर मन में विचार उठा शायद आत्महत्या करने के इरादे से यहां पड़ा हो? इसीलिए चौंककर पूछा—क्यों भाई, क्या मरने का इरादा है क्या? मेरी बात उसने नहीं सुनी।

मैंने फिर उसे झकझोर कर कहा—'ट्रेन आने वाली है—मरना कटना है क्या?'

वह बेतुकी हंसी का ठहाका लगाकर उठकर बैठ गया और हंसते हंसते बोला—कितने बोझिल पहिए इस सीने के ऊपर से निकल गए मैं कभी नहीं मरता। मुर्दा लोगों को और कोई क्या मारेगा? रमु मेरी बिरादरी का था, मेरी तरह अनाथ और बेघरबार। बस इसी हमारी पटरी बैठ गई। रमुआ मुझे मुर्दों की बस्ती में ले गया। लाश की अपनी एक अलग बदबू थी। हर टूटी हुई जिन्दगी की अ एक कहानी, अपना एक दर्शन होता है। शंकर सट्टा खेलते-खेल में डूबता गया, मेहनत-मजदूरी के पैसे सट्टे में, उधार लिए हु सट्टे की भेंट। बदन के कपड़े तार-तार हो गए, कर्ज में चोटी गया—फिर पागल हो गया। दिनभर बकवास—आज पंजा ख दुग्गी पर पांच रुपया, सत्ते वाला तबाह...। उसकी भी व

थी। दुनिया में कोई प्यार करने वाला नहीं, किसके लिए कमाए! किसके लिए जिए? दांव लगाने में सुख मिलता था। एक नशा था जुए का—नशे का सुख—उसको अपने सुख की तलाश थी…। रमुग्रा को अपने सुख की तलाश थी। तन मन आत्मा को बेसुध कर देने वाला नशा। शराब का नशा और संगीत का नशा…"

"अपने आसपास इतनी गरीबी है, इतने दुःख हैं—मैंने तो अपनी कोठे वालियां और उनकी जिन्दगी के नरक देखे हैं बस।"

"मैंने इतनी कम उम्र में नरकों के रेगिस्तान देखे हैं शब्बो। इस रेगिस्तान को पार करने वाला हर मुसाफिर मेरा भाई है—मैं जो रोटी कमाता हूं उसमें उनका भी हिस्सा है और तुम्हारा भी।"

"मुझे तुम्हारे रुपयों की जरूरत नहीं है सगर। मुझे तो इस नर्क से बाहर ले चलो।—देखो सितारों की चमक धीमी पड़ चली है—रात आंचल समेटने लगी है। तुम बहुत थके और परेशान हो। अब तुम सो जाओ।"

सगर ने आंखें मूंद लीं। शब्बो ने झुककर अपने सर्द ओठ सगर के माथे से छुआ दिए…। सगर यह सोचते-सोचते सो गया कि प्यार करना नारी का जन्मजात अधिकार है वह नारी वेश्या हो, अथवा देव कन्या!

७

"नई दिल्ली में गुप्तचर विभाग ने एक अड्डे का पता लगाया है और दो व्यक्तियों को गिरफ्तार किया है। हजारों पोस्टर पर्चे और कार्टून जप्त किए गए हैं। पोस्टर और कार्टून बनाने वाला कलाकार इन दो व्यक्तियों के साथ इसी अड्डे पर एक रात पहले तक देखा गया था। उसके बाल उलझे हुए हैं, दाढ़ी बढ़ी हुई है वह लम्बे कद का

दुबला-पतला आदमी है। गुप्तचर विभाग का छापा पड़ने पर वह किसी प्रकार बचकर निकलने में सफल हो गया है। सरकार ने उसको गिरफ्तार कराने वाले व्यक्ति को पांच हजार रुपये पुरस्कार में देने की घोषणा की है। उसके दोनों साथियों से पूछताछ जारी है। यह बात स्पष्ट हो गई है कि देश भर में जो क्रान्तिकारी साहित्य भेजा गया है और पोस्टर लगाए गए हैं उसके पीछे इसी दाढ़ी वाले कलाकार का हाथ है…।"

नई दुनिया पढ़ते-पढ़ते पारो की आंखों के सामने अंधेरा छा गया… अखबार हाथ से छूट गया। उसका दिमाग घूमने लगा, कनपटी की नसों की सनसनाहट का स्वर पारो स्वयं सुन रही थी। दिल की धड़कनों ने उसे पागल बना रखा था, प्रशान्त का मलिन मुख उसके नेत्रों के सम्मुख नाचने लगा। उसके पीछे पुलिस भाग रही होगी—गुप्तचर विभाग वालों ने अपना पूरा जाल फैलाया होगा? वह कभी भी गिरफ्तार हो सकता है? वह अपने मिशन में जुटा था इसलिए इतने दिनों से गायब था। अब यदि गिरफ्तार हो गया तो पता भी नहीं चलेगा कि किस जेल में ठूंस दिया गया—सोचकर पारो की नसें सनसनाने लगीं।

सगर भी कहीं समाधि लगाकर बैठा है। पारो परेशान है। सुबह यन्त्रवत् उठती है…बार-बार द्वार की ओर जाती है, हर आहट पर चौंक उठती है—शायद प्रशान्त आए—शायद सगर आए? या उनका कोई सन्देश लेकर आए। सगर भी तो पुलिस के चंगुल में फिर से आ सकता है?—सारा दिन निकल जाता है। भोजन बनाने की और खाने की इच्छा नहीं होती। चने का सत्तू उसे आज भी अच्छा लगता है। कभी भूख लगती है तो सत्तू खाकर पानी पी लेती है। अकेली जान के लिए कौन खाना बनाए? दिनभर नई पुरानी मैगजीन पढ़ती है—शाम तुलसी बिरवा पर दीया जलाना उसे अच्छा लगता है। पीछे छोटा-सा आंगन है। रात में अकेला घर काटने को दौड़ता है। सन्नाटा उसे बूंद-बूंद करके पीता है। दीवारों की नाचती परछाइयां उसे डराती हैं। मन को एक अज्ञात वेदना कचोटती रहती है। जब मन पके हुए फोड़े-सा दुखने लगता है तो वह कुछ न कुछ लिखने बैठ जाती है। प्रशान्त डायरी लिखता है। पारो ने भी पिछले दिनों सैकड़ों पन्नों को रंग डाला है।

तनहाई की तस्वीर को कितने रंगों से रंगा है उसने। दिन की धूप और रात के अंधेरों को कितने नाम दिए हैं उसने। प्रशान्त की प्रतीक्षा करते-करते उसकी रग-रग दुखने लगी है। सगर का ख्याल आते ही मन अशान्ति से भर उठता है। फिर किसी बैंगन को काट रहा हो, कहां सोता होगा, कहा रहता होगा? होटलों का खाना क्या उसे अच्छा लगता होगा? पता नहीं कब घर आएगा? रात है कि कटने का नाम ही नहीं लेती है। पुलिस लाइन्स का गजर कितनी देर बाद बजता है···। उसने कमरे की बत्ती बन्द कर दी। आज स्ट्रीट लाईट भी गोल थी। घर-बाहर सब तरफ अंधेरा—सब तरफ सन्नाटा। उसने ग्यारह के घण्टे सुने। फिर लगा सदियां गुजर गईं। वक्त थम गया है—बारह कब बजेंगे? अपनी कांपती हुई उंगलियों की टकराहट उसे सुनाई देती है। नीरवता में कोई स्वर गूंजता है, शायद मन का कोलाहल है। मन को अनजान साये छूते है। दर्द के साये, उदासी का धुआं—क्या यही जीवन है? यदि—इसे जीवन कहा जाए तो मौत की तस्वीर कैसी होगी? दर्द भरी तनहाई कब खत्म होगी? बारह कब बजेंगे? आत्मा पर जैसे कोहरे की एक घनी पर्त छाती जा रही है—सब ओर धुंधलका दीप है। इस धुंध में सुबह और शाम खो गए हैं, पता नहीं यह आत्मा का कोहरा है या रात का धुआं। कभी लगता है रात सुलगने लगी है—उसकी सांसों से धुआं उठा है, उसकी सोंधी-सोंधी खुशबू ने मन पगलाया है।

आसमान इतना भ्रामक क्यों हैं—ऐसा क्यों लगता है कि धुएं के ये बादल बिखर जाएंगे—इन्द्रधनुषी आसमान में फिर नूर बरसेगा?—खट-खट-खट! ये किसकी आवाज है? द्वार पर कौन है? खट-खट-खट! द्वार पर लगता है वाकई किसीने दस्तक दी है। "कौन है दरवाजे पर?"

"मैं—ऽ—ऽ—।" एक आवाज कांपती हुई। ये कौन मुझे डराना चाहता है? मैं नहीं डरती—नहीं—नहीं पारो नहीं डरती। मैं दरवाजा खोलूंगी, कोई मुझे डरा नहीं सकता। पारो का मन कांपता है—हाथ-पांव भी कांपते है। वह दरवाजा खोलती है—सामने अन्धकार में एक आकृति खड़ी है—दुबली-पतली आकृति—अंधेरे का लिबास ओढ़े···बाहर गली सुनसान है—एकदम अंधेरी। अन्दर भी अंधेरा है।।

कुल अंधेरे कमरे में थी। पारो ने कांपते हुए स्वर में पूछा—
"कौ ऽ न ?"

"पारो मैं हूं प्रशान्त।" प्रशान्त आगे बढ़ता है।

अंधकार में ये किसने बांहें फैलाई हैं ? वह किसकी बांहो में है ? अरे, निढाल-सा यह किसका बदन उसके बदन से सिमटा हुआ उसके कदमों में गिर जाना चाहता है ? प्रशान्त की निष्प्राण बांहों में बिजली दौड़ गई। उसने ढहते हुए शरीर को संभाल लिया है…उसके बाजुओं में ताकत आ गई है। उसके बांहों के घेरे में अंधेरा नहीं है। पहले वह खुद पारो की बांहों में था। पारो उससे लिपटकर ढहती हुई दीवार-सी गिरने लगी। प्रशान्त ने उसे संभाला, सहारा दिया। अब पारो उसकी बांहों में थी। अंधेरे में वह उसके दिल की धड़कनों को सुन रहा था। पारो बेसुध थी…जैसे उसने कोई गहरा नशा किया हो…दर्द का नशा कितना जहरीला होता है। प्रशान्त ने पारो की दुखती रगों के दर्द को पहचानने की चेष्टा की और बुदबुदाया—"पारो, तुम्हें क्या हुआ है ?"

पारो पता नहीं किस संसार में थी…वह कहां है, क्या बोल रही है, से इस बात का होश नहीं है।

प्रशान्त ने इस बार कुछ जोर देकर कहा—"पारो !"

"हां ऽ आं…मैं बिल्कुल नहीं डरती। यह अंधकार मुझे पी सकता। यह तनहाई मुझे निगल नहीं सकती। कौन कहता है मैं जाऊंगी…मैं प्रशान्त की बाहों में हूं, मैं अंधकार की बांहों में नहीं पारो की बांहें कसने लगीं…अकड़ने लगीं। प्रशान्त की पकड़ ढीली और अचानक धम्म से धरती पर लुढ़क गया पारो का शरीर…। घबरा गया…वह धरती टटोलकर पारो के पास बैठा…पारो उसकी गोद में था…पारो वास्तव में बेसुध है…बेहोश…प्रशा संभलकर उठा। उसने बत्ती जलाई…ठंडा पानी मटके से नि पारो को संभालने की चेष्टा की…मुंह पर पानी के छींटे पानी उसके मुंह में डाला…अखबार से उसके मुंह पर हवा पसीने से सराबोर थी…।

'' थोड़ी देर में पारो को होश आने लगा, उसके अर्द्ध निमीलित नेत्रों पर प्रशान्त ने उंगलियां फेरीं···उसके बालों को सहलाया और बहुत ही प्यार से पुकारा—"पारो!"

इस बार पारो का स्वर फूटा—"जी"।

उसने नेत्र खोले, प्रशान्त को देखा—एक सर्द मुस्कान उसके अधरों पर एक क्षण को थिरकी और पुनः नेत्र मूंद लिए। प्रशान्त उसका माथा दबाता रहा—अपनी बांहों का सहारा देकर थोड़ा-सा उठाया और ठंडे पानी का गिलास उसके मुंह से लगाकर बोला—"पानी पी लो। अभी मन अच्छा हो जाएगा।"

पारो ने एक सांस में पानी का गिलास चढ़ा लिया।

पारो को होश आने लगा—उसे याद भी आने लगा कि वह बेहोश होकर प्रशान्त की बांहों में गिरी थी—उसे यह भी समझ में आने लगा कि वह अभी भी प्रशान्त की बांहों में थी। उसे अजीब-सा लगा—अच्छा भी लगा···दो क्षण का सुख। वह हौले से उठी और दीवार के सहारे बैठ गई··उसने बारह घंटों की आवाज सुनी। अलसाए और थके हुए स्वर में उसने पूछा—"कब आए?"

"बस अभी-अभी···।"

"इतनी देर क्यों कर दी···?" कहते-कहते पारो रो पड़ी।

प्रशान्त ने कंधे पर थपकाते हुए कहा—"रो मत पारो··तुम जानती हो पारो मेरा कहीं आना-जाना मेरे वश की बात नहीं है, मेरा काम ही ऐसा है?"

पारो और अधिक सिसकने लगी—"मुझे अकेले बहुत डर लगता है। अब मैं अकेली रही तो बीमार पड़ जाऊंगी।"

"तुम तो अभी भी बीमार हो, सूरत देखी है—कितनी दुबली हो गई हो।"

पारो को याद आया—उसने कितने दिनों से आईना ही नहीं देखा था। दुबला तो होना ही था। एक दिन भी भरपेट अन्न नहीं खाया। उसे ख्याल आया प्रशान्त भी तो भूखा होगा? उसने कहां खाना खाया होगा? पारो उठी। उसने थाली में चावल निकाले

ी—"तुम हाथ-मुंह धो लो—मैं अभी गैस पर जीरे से चावल छोंक
हूं।"

"मैं नहीं खाऊंगा, भूख नहीं है।"

"मैं खाऊंगी—बहुत भूख लगी है।"

पारो ने जीरे के नमकीन चावल छोंक दिए। ठंडे पानी से मुंह-हाथ धोया। प्रशांत पारो की स्टडी टेबल पर बैठ गया। पारो ने चावल की प्लेट उसी टेबल पर रख दी। प्रशान्त ने कहा—"तुम भी मेरे साथ खाओ?"

"खाऊंगी न!"

पारो प्रशान्त के पास चेयर डालकर बैठ गई। दोनों चुपचाप खाने लगे। प्रशान्त ने पारो की ओर देखा और मुस्कुरा दिया। पारो के मन में सैंकड़ों बिजलियां कौंध गईं। पारो स्वयं को रोक नहीं सकी और बोली—"आज भी तुम नहीं आते तो सुबह तक मेरी लाश मिलती।"

"सगर कहां है?"

"वह कई दिनों से गायब है।"

"कहां रहता है?"

"चोर-उचक्कों के साथ डकैतियां डालने लगा है।"

"तू मुझे उसका पता दे। मैं उसे वापस घर लाऊंगा। उसे राह प
लाना मेरा काम है।"

प्रशान्त और पारो ने भोजन समाप्त करके हाथ-मुंह धोया।
बजने को था। पारो ने कहा—"दिनभर के हारे-थके हो, आ
आराम से भैया के कमरे में सो जाओ।"

"यह कैसे सम्भव है?"

"क्यों?"

"तुम्हें बता चुका हूं न, मैं धरती पर ही सोऊंगा, प
शायद मुझे नींद भी न आए।"

"अच्छा, गद्दा लगा देती हूं।" पारो ने भैया के कमरे मे
पास दरी बिछाकर गद्दा लगा दिया, सफेद चादर बिछा दी
चुपचाप लेट गया। उसे लगा पारो अपने कमरे में जाकर सो

लेकिन नहीं। पारो कुछ ही क्षणों में हाथ में तेल की शीशी लेकर कमरे में प्रविष्ट हुई। वह निःसंकोच भाव से प्रशान्त के सिरहाने बैठ गई और बोली—"लाओ तुम्हारे सिर मे तेल लगा दूं। कितना सूखा सिर है। पता नहीं कितने वर्षों से तेल नहीं डाला।" प्रशान्त चुप रहा। पारो ने हथेली पर तेल निकालकर प्रशान्त के तालू पर ठोकना शुरू कर दिया। सिर में खूब तेल ठोककर वह बालों मे उंगलियों से सहलाने लगी। प्रशान्त को कितना सुख मिला, जीवन मे पहली बार स्नेहिल स्पर्श। उसकी आत्मा रस-सिक्त हो उठी। आत्मा का स्वर फूटा—"ओह इतना सुख है तुम्हारे स्पर्श में…कहां छुपाकर रखा था अपना यह प्यार ?"

पारो लजा गई, एक मधुर मुस्कान उसके अधरों पर थिरक गई। …उसके प्रौढ काले नेत्र स्वतः मुंद गए। पूजा भाव से उसने कहा—"मन की गहराइयों में दबा हुआ प्यार आज स्वतः मुखर हो उठा। गहरे बहुत गहरे, कभी मन की दीवार पर प्यार की कोमल नन्ही उंगलियों ने तुम्हारा नाम लिख दिया था समय का भ्रामक कोहरा उन दीवारों पर छाया हुआ था। इस बार मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करती रही। तुम नहीं आए तो एकांत ने मुझे बहुत समय दिया। मुझे लगा कोहरा हट रहा है। तुम्हारा नाम शोलों की भांति दहकने लगा…मैं पगली हो उठी तुम्हारी प्रतीक्षा मे…अंधकार मे कितनी बार बाहें पसारी मैंने…कितनी आतुर थी मेरी बाहे तुम्हारे लिए…तुम आज भी नहीं आते तो जाने क्या होता ?" कहते-कहते पारो रो पड़ी। प्रशान्त ने अपनी हथेली से उसके आंसू पोंछते हुए कहा—"मेरे मिशन में मेरा साथ दो। रेणू की भांति पीछे नहीं हटना—मुझे एक साथी की आवश्यकता है। तुम्हारा प्यार मेरी प्रेरणा बनेगा।"

"रेणु जी अब कहां हैं ?"

"तुम क्या जानती हो उन्हें।"

"हां।"

"कैसे !"

"बहुत अकेली थी इस बार, तुम्हारी डायरी चोरी से पढ़ी

णुजी का परिचय प्राप्त हुआ । अब कहां हैं रेणुजी । आप कब से
ां मिले ?" पारो ने अपनी जिज्ञासा प्रकट की ।

प्रशान्त के अधरों पर घृणा उभर आई । फिर स्वयं को संभालते
ए प्रशान्त बोला—"शायद मैं इस खेल को नहीं जानता । मैं प्यार को
नुभूतियों के स्तर पर सहलाता रहा । अब लगता है रेणु को आग का
खेल पसन्द था । उस खेल की मैंने कल्पना भी नहीं की थी जो रेणु ने
डाक्टर गौतम के साथ खेला ।"

"कौन डाक्टर गौतम ? फिर क्या हुआ ?" पारो विस्फारित नेत्रों
से प्रशान्त की ओर देख रही थी ।

प्रशान्त भी चुप न रह सका—"मैं सड़क छाप आदमी हूं न, शायद
इसीलिए रेणुजी की नजरों में गिर गया । नाटक उन्होंने बहुत किया
था—मैंने फैसला कर लिया था कि अब कभी रेणु से नहीं मिलूंगा ।
रेणुजी यह ट्रेजडी सहन नहीं कर सकीं । बीमार पड़ गईं । डाक्टर
गौतम उनका इलाज कर रहे थे । बीबी-बच्चों वाला बेचारा डाक्टर
रेणुजी का इलाज करते-करते उनका मरीज बन गया ।...मिसेज गौतम
को मैं जानता हूं । जब उन्होंने मुझे बतलाया तो विश्वास करना ही
पड़ा । उन्होंने अपनी आंखों से रेणु और डाक्टर गौतम को...बैड रूम
में देखा है । उन दृश्यों का वर्णन मिसेज गौतम ने किया है...परवंटे
...बीस्ट...उनका भी कितना बड़ा स्केन्डल है शहर का ?"

"छोड़िए भी, भूल जाइए उस कहानी को !" पारो ने निश्वा
छोड़ते हुए कहा ।

"पारो, रेणु मेरे कल्पना-लोक की देवी थी...पहाड़ों की रानी
...भरी बरसात में जब यूनिवर्सिटी वाली ढलान पर सूर्योदय के
रेणुजी को सतरंगी छतरी लगाए उतरते हुए देखा तो मेरे मन ने
—हियर कम्स दि क्वीन आफ दि हिल्स (पहाड़ों की रानी चल
रही है) वासना के स्फुलिंगों को पहचानने की शक्ति मुझमें
थी ।"

"छोड़ो भी प्रशान्त, रेणु एक नारी है, किन कुण्ठाओं से ग्र
मन का शैतान कब जाग गया हो, कैसे उस आग के दरिया

होगी हमे क्या पता ?"

पारो ने यह बात इतने सहज भाव से कही कि प्रशान्त आश्चर्य मे डूबा उसकी ओर देखता रह गया। पारो ने चौंककर पूछ लिया—"मैंने कुछ गलत कह दिया क्या ?"

"नहीं, गलत कुछ भी नही है···मैं यह सोच रहा था कि गांव की सीधी-साधी बालिका कितनी चतुर हो गई···दुनिया-भर की किताबें पढ़कर कितना कुछ सीख गई है।"

"इतने वर्ष हो गए मुझे गांव छोड़े हुए। अब तो मैं विश्वविद्यालय की छात्रा हूं—आप अभी भी मुझे गांव के ताल के किनारे पत्थरों से इमलियां झुराने वाली पारो मानकर चलते हैं।"

"हां पारो, मैं तुम्हें आज भी उतना ही अबोध और निरीह पाता हूं···।"

"उतनी अबोध तो नही हूं। मैं बिना किसी संकोच के आज यह स्वीकार करती रही हूं—तुम्हारा स्नेहिल स्पर्श पाने के लिए तड़पती रही हूं। आज अंधकार की आड़ मे तुम्हे अपनी बांहों में एक क्षण को पाकर मेरी युग-युग की प्यास बुझी है। नारी के लिए पुरुष का पहला स्पर्श उसके जीवन की चिर स्मरणीय घटना और एक बड़ी पूंजी होती है। आग के खेल की कल्पना कभी मन मे नही उठी—लेकिन तुम्हारे एक मधुर स्पर्श के लिए मैं तरस रही थी। यह सच है प्रशान्त।"

पाषाण मे भी छिद्र होते हैं। प्रशान्त पाषाण भी नही था···। किसी अन्तर्प्रेरणा से प्रशान्त के अधर पारो के माथे पर झुक आए—दो क्षण को वह भूल गया कि किस संसार मे था—प्रशान्त संयत भाव से उठा—उसने पारो के कपोलों को थपकी देकर कहा—"बहुत रात हो गई है, अब सो जाओ—मुझे सुबह बहुत काम है।"

पारो ने जितनी कभी कल्पना भी नही की थी वह उसे अनायास मिल चुका था—वह अत्यन्त ही तुष्ट भाव से उठी। भरपूर अंगड़ाई लेकर उसने कहा—"गुड नाइट।" और पारो अपने बेडरूम में चली गई।

प्रशान्त का कोई साथी उसके नाम एक गोपनीय पत्र पारो को दे

गया था। प्रशान्त दो दिन के लिए भोपाल गया था। वापस आने पर पारो ने उसका पत्र उसको सौंप दिया। पत्र प्रशान्त ने तत्काल खोलकर पढ़ा। शायद कुछ अप्रत्याशित घटा है। प्रशान्त किन्हीं विचारों में डूब गया है—शायद कोई समस्या है। पारो ने प्रशान्त के मौन को भंग किया :

"क्या समाचार है? कुछ त्रस्त दिखाई दे रहे हो?"

"पुलिस को यह ज्ञात हो गया है कि मैं सागर पहुंचा हूं—इस बात की भी सूचना उन्हें है कि सागर इन दिनों मेरा गढ़ है, मेरा कार्यक्षेत्र है। किसी भी दिन तुम्हारे घर पर छापा मारा जा सकता है। मेरे साथ तुम लोगों को भी पुलिस परेशान करेगी।"

"मुझे इसका कोई भय नहीं है—आपके साथ मैं भी जेल जाने को तैयार हूं।"

"प्रश्न जेल जाने का नहीं है—प्रश्न है उस महत्त्वपूर्ण कार्य का जो इस क्षेत्र में मुझे करना है। उसके लिए मैं चाहता हूं कि मेरी गिरफ्तारी के बाद तुम इस खेल में पूरी तरह से कूद पड़ो। क्या मैं तुम पर विश्वास नहीं कर सकता?"

"प्रशान्त मुझे चुनौती मत दो, मैं तुम्हारे साथ हूं। चाहो तो मेरी परीक्षा ले लो।" पारो ने दृढ़ संकल्प के साथ कहा।

"तो आओ, हम लोग गंभीरतापूर्वक इस चुनौती को स्वीकार करें।"

प्रशान्त अत्यन्त ही संयत भाव से पारो की स्टडी टेबल पर बैठ गया। उसने अपने सामने एक कोरा कागज फैलाया और कलम हाथ में ले ली। प्रशान्त दो क्षण को मौन रहा। फिर अत्यन्त ही गंभीर स्वर में उसने कहा—"पारो यह एक युद्ध है जो हम छेड़ने जा रहे हैं। हमारे गुप्तचर विभाग ने रिपोर्ट दी है कि शीघ्र ही मध्यवर्ती चुनाव होंगे। जेल में जितने लोग ठूंसे गए हैं उन्हें छोड़ दिया जाएगा। विरोधी पार्टी का अनुमान है कि जनता शासन की नीतियों से प्रसन्न है—जनता शायद भयाक्रान्त है, उनका साथ देगी। उनका अनुमान है कि उनके विरोध में अच्छे प्रत्याशी नहीं आएंगे। जेल से छूटकर लोग घरों में बन्द हो जाएंगे। किसान उनका साथ देंगे। व्यापारी वर्ग में विरोध करने का

साहस दोष नही है—शासकीय कर्मचारी विरोध की बात सोच भी नहीं सकते हैं। ममार उगते सूरज की पूजा करता है। यह नियम शाश्वत है। क्या तुम समझती हो कि यह सब कुछ सही है।"

"आप स्वयं क्या सोचते हैं?"

"हम जनतन्त्रीय प्रणाली में विश्वास रखते है। विरोधी पार्टी को सशक्त बनाना चाहिए। जिन्होंने यातनाएं सही है वह कुन्दन की भांति तप चुके हैं। उन्हें कसौटी पर परखा जा चुका है। वह जेल के बाहर आकर अपने घरों को वापस नहीं जाएंगे—पार्टी का काम करेंगे। व्यापारी वर्ग उनका साथ नहीं देगा। कितना अन्याय हुआ है उनके साथ, यह हम जानते हैं। भ्रष्ट अधिकारियो ने इन दिनों उन्हें बुरी तरह से निचोड़ा है। बड़े-बड़े व्यापार, संस्थानों को छापा मारने की धमकी दी गई, उन्हें कानून के शिकंजे में कसने की धमकी दी गई और अन्ततः उनसे बड़ी-बड़ी धनराशियां वसूल की गईं। व्यापारी वर्ग के मन में आग धधक रही है। जनता हमारे साथ है। यदि हमने निष्ठापूर्वक कार्य किया तो हम एक भयंकर विरोधी वातावरण का निर्माण करने मे सफल हो सकेंगे—बस तख्ता पलट जाएगा—यह चुनाव हमारे पक्ष में जाएगा।" प्रशान्त को बीच मे ही रोकते हुए पारो ने कहा—"पिछले दिनों में कितनी अकेली रही हू—इस प्रश्न पर मैंने भी गम्भीरतापूर्वक विचार किया है। पीछे पलटकर देखिए, हम लोग किस मोड़ से गुजर रहे थे। देश में भ्रष्टाचार बढ़ रहा था—कानून-व्यवस्था भंग हो गई थी। लोगों के मन से सुरक्षा की भावना समाप्त हो गई थी—अनुशासन के नाम पर कुछ भी शेष नही रहा था। देश के नौजवानो और विद्यार्थियों को गुमराह किया जा रहा था, ऐसे विकट समय मे शायद सख्ती और अनुशासन से काम लेने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नही था। योजना को कार्यान्वित करने वाली संस्था अथवा व्यक्ति गलत हो तो परिणाम गलत निकलता है और योजना गलत प्रतीत होती है। शायद ऐसा ही कुछ हो गया है। चन्द स्वार्थी पदलोलुप और भ्रष्ट व्यक्तियो ने एक गिरोह बना लिया और सब कुछ उल्टा हो गया।"

"नही पारो, यह विषय तुम्हारा नही है, तुम शायद इससे अधिक

ोच सकोगी—यह सब क्यों हुआ, इसमें एक रहस्य है। इतिहास-कल जब इस काल का इतिहास लिखेगा तब उसकी कलम को कोई नहीं पाएगा। तुम बस इतना समझ लो कि कल के दिन मैं यदि फ्तार हो जाऊं तो मेरी जगह तुम खड़ी हो जाओ। तुम अपने हाथों यह परचम संभाल लो।"—प्रशान्त ने पारो की ओर देखते हुए तैश कहा।

"तुम्हें कुछ नहीं होगा प्रशान्त, हम लोग साथ काम करेंगे।" पारो ने विश्वास दिलाया।

प्रशान्त ने मन की बात कह डाली—"मेरा अन्तर्मन कुछ और कहता है इसलिए तुम्हें समझा दूं—तुम्हें क्या करना है, हमको इस संभावना की आहट मिल गई थी। हमने अपनी बैठक में पूरा कार्यक्रम निर्धारित कर लिया था। हमारे साथी तुमसे सम्पर्क साधेंगे। तुमको गांव की ओर जाना है, हमारे हजारों वालिन्टियर गांव की ओर जाने को तैयार बैठे हैं—यह घर-घर जाएंगे, अपनी बात लोगों को समझाएंगे और उनका सहयोग मांगेंगे।—तुम भी उनके साथ किसी दिशा में जाओगी। सम्भव है कभी तुम्हें भरपेट रोटी न मिले, चने चबाकर तुम्हें काम करना पड़े। चलते-चलते तुम्हारे पांव में छाले पड़ जाएं—लेकिन तुम्हें अपनी मंजिल की ओर बढ़ते जाना है। तुम चाहो तो अपने गांव की दिशा में जा सकती हो...।"

"हां प्रशान्त, मैं अपने गांव की ओर जाऊंगी। यहां से भोजपुरा-त्रिलेनी—बहरोल—घामोनी और फिर अपने गांव...। एक बार मेरे साथ घामोनी चलो, वहां बाबा के मजार पर हम भी मिलकर प्रा करेंगे। हमारी मुराद भी पूरी होगी।" पारो के मुखमंडल की चे जीवित हो उठीं—उसके नेत्रों में कोई सपना तैरने लगा—प्रशान्त विश्वास दिलाया—"हम एक दिन साथ-साथ वहां चलेंगे। काश में सगर आ जाता, यह तुम्हारा साथ दे सके तो तुम्हारा मनोब रहेगा।"

"भैया जरूर आएगा। मेरा मन कहता है—भैया वापस सदर बाजार की तरफ कोई तान्त्रिक बाबा हैं, सोचती हूं

कोई कपड़ा लेकर उनके पास जाऊंगी—वह अपनी तन्त्र विद्या से भैया को वापस बुला देंगे।" पारो ने कहा।

"तुम्हें विश्वास है इन बातों पर ?"

"क्यों ? क्या तुम देवी-देवता नहीं मानते ? क्या तन्त्र-मन्त्र कोई विद्या नहीं है ?"

"अच्छा बाबा सब सच है—सब सही है। भगवान करे तेरा भैया जल्दी आए।"

"अब उठो भी, स्नान करके भोजन कर लो।"

"अभी मुझे अपना रूप भी बदलना है—दाढ़ी को विदा दे रहा हूं। सोचता हूं दाढ़ी काटकर सिर के बाल छोटे करने के बाद हुलिया काफी बदल जाएगी—सुबह होने से पहले यहां से भागना है…।"

"तुम स्वयं जंगल की तरफ क्यों नहीं भाग जाते हो—धामोनी चले जाओ। घना जंगल है—मैं उसी दिशा में गांव-गांव जाकर अपना काम करूंगी और तुमसे मार्गदर्शन लेती रहूंगी—तुम फूटे किले में रह सकते हो।"

"मुझे कुछ निर्देशों का पालन करना पड़ता है—मैं अपने मन से कोई भी काम नहीं कर सकता।"

"तुम क्या इतने बिके हुए हो ?"

"हां पारो, यह सही है। मेरी पूरी जिन्दगी बिकी हुई है।"

"मैं समझ सकती हूं—तुम्हें किसीने खरीदा नहीं है। तुम खुद बिक गए हो। ईश्वर तुम्हारी सहायता करे—तुम जो कहोगे मैं करूंगी…।"

प्रशान्त ने कुछ सोचते हुए अन्ततः मन की बात कह डाली—"फिर तुम्हें बतलाए देता हूं मैं स्वयं गिरफ्तार हो जाऊंगा कल शाम तक।—सागर में लोग मुझे जानते हैं। दाढ़ी मुड़ाकर शहर में एक चक्कर लगाऊंगा तो खलबली मच जाएगी—शाम तक तो अपनी मंजिल तक पहुंच जाऊंगा।"

"जेल जाकर कौनसी योजना पूरी करनी है ?"

"इस क्षेत्र के आसपास जेलों में मेरी पार्टी के कुछ प्रम

उनसे कुछ महत्त्वपूर्ण बातें करनी हैं। उन्हें बाहर के कुछ आवश्यक समाचार देने हैं—उनसे कुछ निर्देश प्राप्त करने हैं। हमारे संदेश तुम्हें जेल से मिलते रहेंगे। तुम कहीं भी रहो—हमारे विशेष दूत तुम तक आएंगे।"

"पहले क्यों नहीं बताया—इतनी बड़ी भूमिका बांधने की क्या आवश्यकता थी ?"

"मैं उस आवश्यकता को समझता हूं।—तुम्हें अभी भी सब कुछ कहां बताया है। अभी बहुत कुछ शेष है।"

"मैं प्रतीक्षा करूंगी उस क्षण की···।"

"मेरी प्रतीक्षा नहीं करोगी···। कब मैं जेल से निकलूंगा, अभी क्या कहा जा सकता है।"

"मैं जिंदगी-भर तुम्हारी प्रतीक्षा कर सकती हूं। मुझे डराओ मत।"

"मैं जानता हूं तुम किसी बात से डरोगी नहीं। मैंने तुम्हारे मन को बहुत पहले पहचान लिया था।"

"इसके बाद भी रेणुजी की बांहों में गिर गए ?"

"बांहों में तो क्या गिरा, हां···फिसल गया था। मैं थोथे आदर्शों से घृणा करता हूं। मेरे जीवन की अपनी मान्यताएं हैं, अपने सिद्धांत हैं···लेकिन इस सबके बावजूद मैं इन्सान हूं। पुरुष का नारी के प्रति आकर्षित होना कितना सहज है—इसे स्वीकार क्यों नहीं करती हो··· लेकिन किसी आकर्षण के लोभ में मैं अपने सिद्धांतों को नहीं त्याग सकता इसलिए शायद रेणु को अलविदा कहना पड़ा···।"

"कल सुबह तक मुझसे भी अलविदा कहोगे ?"

"नहीं, मैं तुमसे कहूंगा फिर मिलेंगे। अच्छा तुम्हारे लिए मेरा कोड वर्ड भी यही होगा 'फिर मिलेंगे'।"

"मैं फिर मिलेंगे नाम से प्रेषित संदेशों की प्रतीक्षा करूंगी···।"

दो दिन, दो रातें बुरहानपुर की सगर जीवन में कभी नहीं भूल पाएगा। सगर को समय मिला शबनम के साथ रहने का, उसे समझने का…। उसे लगा शबनम अन्य किसी भी नारी की भांति पहले एक नारी है…उसे कोठे पर लाया गया है, वेश्या बनाया गया है—सिर्फ इसी बात को लेकर कोई उसकी जिन्दगी से प्यार करने का अधिकार नहीं छीन सकता।—चंदन का गुण शीतलता प्रदान करना है, बादलों को बरसने से कौन रोक सकता है—फूलों की खुशबू को कैद नहीं किया जा सकता… नारी को प्यार करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता।

उस रात सगर शबनम की मरमरी बाहों में था—उसने शबनम को वचन दिया था कि उसकी हर बात का सही उत्तर देगा। न्यायालय में समक्ष गीता और गंगा की सौंगध उठाकर साक्षी धड़ल्ले से झूठा साक्ष्य देता है—सगर का व्यक्तिगत अनुभव था। लेकिन शबनम की बाहों में प्यार के नाम पर सगर ने स्वीकार किया कि उसका धन्धा चोरी करना, जेबें काटना, वैगन काटना है। वह अपराधी है… उसके पास पाप की कमाई है। विवश होकर वेश्या-वृत्ति करने वाली कोठे वालियां उससे अधिक पवित्र हैं—वह अपना तन बेचती है—तब उन्हें कुछ मिलता है। सगर चोरियां करता है—डाके डालता है। अब सगर शबनम का ग्राहक नहीं था…उसका प्रेमी था—उसके सपनों का राजकुमार।

शबनम का सगर चोरी नहीं करेगा, डाका नहीं डालेगा, कोई अपराध नहीं करेगा। शबनम के माथे की बिंदिया चूमकर सगर ने यह शपथ उठाई थी।

लोग जीवन-भर मन्दिर की मूर्तियों के समक्ष शीश झुकाते हैं—अपने अपराधों के लिए क्षमा प्रार्थना करते हैं और हर बार वही गलतियां करते हैं…मस्जिदों में अजानें लगाकर ईमान के नाम पर झूठ बोलते हैं…सगर ने माथे की बिंदिया चूमकर जो शपथ उठाई थी उसका कोई साक्षी इन्सान नहीं था। उसने वेश्या के कोठे पर अपनी प्रियतमा को

वचन दिया था। शबनम का प्रस्ताव सुनकर सगर मन ही मन हंसा था। एक चोर का वचन—वेश्या को ? क्या मजाक है ? फिर शबनम गंभीर होती गई, रोई। उसने अपना आंचल फैलाकर सगर से भिक्षा मांगी—उसके प्यार से सगर का मन पिघल गया। एक विशाल दिव्य ज्योति उसके अंधेरे मन में जल उठी…भागती हुई मालगाड़ी के बोझिल पहियों में उसने मंदिर के घंटों का स्वर सुना—शबनम साक्षात् देवी का रूप धारण किए थी—सगर की जिन्दगी फिर एक नये मोड़ पर आकर खड़ी हो गई…उसका सारा तन रोमांचित हो उठा, उसके अधर शबनम के माथे की बिंदिया पर झुके और मन ने एक नया निर्णय लिया—उसने शबनम को वचन दिया।

बुरहानपुर से चलते समय उसने शबनम से कहा—"यदि वचन का पालन नहीं कर सका तो तुम्हें जीवन में फिर कभी मुंह नहीं दिखलाऊंगा।"

शबनम ने दृढ़ स्वर में कहा था—"मेरे प्यार में यदि शक्ति है तो तुम फिर लौटकर आओगे—तुम अपना वचन निभाओगे।"

विचारों की एक भीषण आंधी में लड़खड़ाता हुआ सगर बम्बई जा पहुंचा। वह कुछ दिन तक यूं ही भटकना चाहता है। मन की भटकन के समानान्तर कुछ चाहिए। सगर रात-रातभर समन्दर के किनारे भटकता है। उगते हुए फफोलों की जलन नहीं बुझती है। सगर ने शराब न पीने की कसम खाई है—उसने चोरी न करने का वचन शबनम को दिया है। रोग की रोक-थाम के लिए औषधि बीमार को दी जाती है। रोग के कीटाणुओं का युद्ध औषधि से होता है। पराक्रमी की विजय होती है। नशा न मिलने से रक्त विद्रोह करता है…उसका स्वर सगर को सुनाई देता है।—माल से भरी मालगाड़ियां लोहे की पटरियों पर घड़-घड़ाती हुई गुजर जाती हैं—मुसाफिर अपना माल-असबाब लिए ट्रेन से उतरते हैं, टैक्सियों में बैठकर चले जाते है। समन्दर की अनगिनत लहरों की भांति बम्बई की सड़कों की भीड़, बाजारों में होने वाला लाखों-करोड़ों रुपयों का व्यापार देखकर सगर का मन बहकता है। कन्धे बार-

बार उचकते हैं, भुजाओं की मांसपेशियां कसमसाती हैं, उंगलियां मचलती हैं—फिर सहसा ही कन्धे झुक जाते हैं, मांसपेशियों का तनाव ढल जाता है—उंगलियों की थिरकन थम जाती है—मन बुझ जाता है।

एक भयंकर समुद्री तूफान में घिरे जहाज की कल्पना सगर के मन में बार-बार उठती है। जहाज तट छूना चाहता है—तूफानी लहरें उसे बारम्बार पीछे धकेल देती हैं। जहाज मानों भी साबुत है। रोग की रोकथाम के लिए और अधिक कड़वी औषधि चाहिए। भीड़ से मन भर गया···शोर से कान पक गए। सगर के मन को शांति चाहिए—वह पुनः फ्रंटियर मेल पर सवार हो गया···कोटा से दिल्ली।···दिल्ली भी बहुत बड़ा शहर है—फिर हरिद्वार, ऋषिकेश, लछमन झूला···दोनों ओर उत्तुंग पर्वत शिखर—बीच में बहती निर्मल गंगा—गंगोत्री उद्गम—इतनी महान् नदी का स्रोत···हिम मंडित पर्वत मालाएं···दूर-दूर तक भयंकर सन्नाटा, सन्नाटे का सीना चीरती हुई बर्फीली हवाएं। बर्फ का घर 'हिमालय'। हिमालय में सगर ने मौनी बाबा के दर्शन किए—धर्म के नाम पर एक कमण्डल, धूनी रमाते हुए कई बरस बीत गए। सगर का ज्ञान जागा, मनुष्य की क्या आवश्यकताएं हैं? कितना धन चाहिए उसे? कितनी धरती चाहिए···कितना बड़ा मकान चाहिए? तृष्णा का क्या अन्त है? इतनी आपा-धापी क्यों और किसलिए? मन की शांति से बढ़कर और क्या है? मन का सन्तोष चाहिए···शांति चाहिए। प्रेम स्रोत है—जीवन-गंगा के समान विशाल है।—उसे गंगा की भांति पावन बनाए रखना है।

तूफान घटने लगा—उत्ताल तरंगें टूटने लगीं। जहाज मंथर गति से तट की ओर बढ़ता रहा। सगर को घर की याद आने लगी—पारो का प्रेम उसे पुकारने लगा···शबनम की स्वर-लहरी उसके कानों में गूंजने लगी। सगर पहाड़ों के चक्करदार रास्तों को छोड़कर नीचे समतल मैदान की ओर बढ़ने लगा···वापस दिल्ली—झांसी और अन्ततः सागर।

सगर ऑटो रिक्शा में बैठकर स्टेशन से घर को चल दिया। पारो उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी। इतने दिनों की पूरी कहानी उसे

नाएगा···उससे क्षमा-याचना करेगा···पारो उसे क्षमा कर देगी। सुबह का भटका हुआ शाम को यदि घर वापस आ जाए तो भूला हुआ नहीं कहलाता है।

मकान में ताला लगा देखकर सगर का माथा ठनका। क्या कारण हो सकता है ? पारो कहां जा सकती है ? सगर ने अपने पड़ोस में पूछ-ताछ आरम्भ की। जो कहानी उसे सुनने को मिली—वह सहसा ही उस पर विश्वास नहीं कर सका।

प्रशान्त को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया था। प्रशान्त क्रांतिकारी था—उसका इस घर में आना-जाना था। पारो यदि घर छोड़कर न भागती तो पुलिस उसे भी गिरफ्तार करके जेल में डाल देती।

किसी व्यक्ति के गिरफ्तार हो जाने का समाचार इन दिनों विशेष महत्त्व नहीं रखता था। प्रशान्त का किसी राजनीतिक पार्टी से सम्बद्ध होना स्वाभाविक था। सगर के लिए यह समाचार बिल्कुल नया नहीं था। वह मात्र पारो को लेकर चिंतित था। कहां जाएगी बेचारी अकेली पारो ? यह प्रश्न सगर को मथ रहा था। अन्त में उसने निश्चय किया—प्रशान्त का पता लगाना आवश्यक है ? प्रशान्त किस जेल में है यह मालूम किया जा सकता है।

सुबह होते ही उसने परिचित पुलिस अधिकारियों से संपर्क साधा... उनके सहयोग से जेल अधिकारियों से मिला। प्रशान्त अभी तक सा... जेल में था। रविवार को दस बजे मुलाकात का समय निश्चत... गया।

पारो को गांवों में क्रांति जगाने के लिए भेजा गया था। उसका क्षि... क्षेत्र भोजपुरा से लेकर घामोनी तक था। इसी रास्ते में आस-पास ... भी गांव में पारो अपने साथियों के साथ मिल जाएगी—उसे गांव... जाना है। इस तरह कितनी ही टुकड़ियां भेजी गई हैं। दसों दिशा... लोग गए हैं। किसानों और मजदूरों को जगाना है। किसान को सु... नहीं मिलतीं, भूमिहीनों को भूमि नहीं मिलती, बीड़ी मजदूरों को वेतन नहीं मिलता, इन सबको मिलकर विद्रोह करना है—

उठानी है। इनको जगाने का काम पारो और साथियों को सौंपा गया है। अच्छा काम है। सगर को भी इसमें हाथ बटाना चाहिए। बूंद-बूंद से समुद्र बनता है। सगर जैसे नौजवानों की आवश्यकता है। देश का नया खून आगे आना चाहिए। तभी क्रांति सफल हो सकती है।

प्रशांत की बात सगर के मन में बैठ गई। उसे भी नया जीवन आरंभ करने के लिए और आत्मशुद्धि के लिए एकांत की आवश्यकता थी। अनिश्चित भविष्य की शांति की खोज इस प्रकार आरम्भ की जा सकती है—वह पारो का साथ देगा। पारो उसकी बहिन है, शबनम को दिए हुए वचन को पूरा करने का उसने बीड़ा उठाया था। शबनम के लिए वह सब कुछ कर सकता है। पारो के लिए भी वह सब कुछ कर सकता है। पारो का और उसका आत्मा का सम्बन्ध है, रक्त का सम्बन्ध है।

यह परम सत्य है कि मनुष्य के जीवन में एक शारीरिक भूख है, किन्तु उससे भी बड़ी प्यास है उसकी आत्मा की। इन दोनों का मिलन समन्वय रेखा पर होना आवश्यक है अन्यथा जीवन में सूनापन भर जाएगा। वह पारो को अकेला नहीं छोड़ सकेगा। सगर की कल्पना ढाल वाली जंगली पहाड़ी पर फिसलने लगी···पारो ऐसी ही किसी पहाड़ी ढलान पर अपने साथियों के साथ घूम रही होगी।

मनुष्य जब सच्ची लगन से अपना ध्येय प्राप्त करने हेतु अग्रसर होता है तब कोई भी चट्टान उसकी राह नहीं रोक सकती। बादू जैसे अनगिनत साथी पीछे छूट गए, दुनिया के तमाम धन्धे सगर भूल गया और वह पारो की खोज में निकल पड़ा। विद्रोह क्षेत्र की ओर जाने के पूर्व उसने पारो के लिए नये कपड़े खरीदे, ढेर सारा भुना हुआ चना, मूंगफली और गुड़ खरीदकर पोटली बांध ली। थोड़ी-सी मिठाई भी खरीदकर रख ली। सगर ने सागर से बहुरीन का टिकट कटवाया। ईश्वर ने उसकी सहायता की। बस धसान नदी का पुल पार करने लगी तो सगर ने नदी के जल के पास चट्टानी धरती पर पारो को खड़े हुए देखा। उसके साथ दो अजनबी व्यक्ति थे। सगर के गुलाबी स्व— फड़कने लगे, उसकी नीली निर्मल आंखों में

...उससे क्षमा-याचना करेगा...पारो उसे क्षमा कर दे...
का भटका हुआ शाम को यदि घर वापस आ जाए तो भूला हुआ कहलाता है।

मकान में ताला लगा देखकर सगर का माथा ठनका। क्या कारण सकता है ? पारो कहां जा सकती है ? सगर ने अपने पड़ोस में पूछ- आरम्भ की। जो कहानी उसे सुनने को मिली—वह सहसा ही उस विश्वास नहीं कर सका।

प्रशान्त को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया था। प्रशान्त क्रांतिकारी —उसका इस घर में आना-जाना था। पारो यदि घर छोड़कर न भागती तो पुलिस उसे भी गिरफ्तार करके जेल में डाल देती।

किसी व्यक्ति के गिरफ्तार हो जाने का समाचार इन दिनों विशेष महत्त्व नहीं रखता था। प्रशान्त का किसी राजनीतिक पार्टी से सम्बद्ध होना स्वाभाविक था। सगर के लिए यह समाचार बिल्कुल नया नहीं था। वह मात्र पारो को लेकर चिंतित था। कहां जाएगी बेचारी अकेली पारो ? यह प्रश्न सगर को मथ रहा था। अन्त में उसने निश्चय किया—प्रशान्त का पता लगाना आवश्यक है ? प्रशान्त किस जेल में है यह मालूम किया जा सकता है।

सुबह होते ही उसने परिचित पुलिस अधिकारियों से संपर्क साधा। उनके सहयोग से जेल अधिकारियों से मिला। प्रशान्त अभी तक सागर जेल में था। रविवार को दस बजे मुलाकात का समय निश्चत हो गया।

पारो को गांवों में क्रांति जगाने के लिए भेजा गया था। उसका विद्रोह-क्षेत्र भोजपुरा से लेकर घामोनी तक था। इसी रास्ते में आस-पास किसी भी गांव में पारो अपने साथियों के साथ मिल जाएगी—उसे गांव-गां जाना है। इस तरह कितनी ही टुकड़ियां भेजी गई हैं। दसों दिशाओं लोग गए हैं। किसानों और मजदूरों को जगाना है। किसान को सुविधा नहीं मिलतीं, भूमिहीनों को भूमि नहीं मिलती, बीड़ी मजदूरों को प वेतन नहीं मिलता, इन सबको मिलकर विद्रोह करना है—आ

उठानी है। इनको जगाने का काम पारो और साथियों को सौंपा गया है। अच्छा काम है। सगर को भी इसमें हाथ बटाना चाहिए। बूंद-बूंद से समुद्र बनता है। सगर जैसे नौजवानों की आवश्यकता है। देश का [illegible] आगे आना चाहिए। तभी क्रांति सफल हो सकती है।

प्रभात की बात सगर के मन में बैठ गई। उसे भी नया जीवन आरंभ करने के लिए और आत्मशुद्धि के लिए एकांत की आवश्यकता थी। अनिश्चित भविष्य की शांति की खोज इस प्रकार आरम्भ की जा सकती है—वह पारो का साथ देगा। पारो उसकी बहिन है, प्रभात को दिए हुए वचन को पूरा करने का उसने बीड़ा उठाया था। प्रभात के लिए वह सब कुछ कर सकता है। पारो के लिए भी वह सब कुछ कर सकता है। पारो का और उसका आत्मा का सम्बन्ध है रक्त का सम्बन्ध है।

यह परम सत्य है कि मनुष्य के जीवन में एक शारीरिक भूख है किन्तु उससे भी बड़ी प्यास है उसकी आत्मा को। इन दोनों का [illegible] समन्वय रेखा पर होना आवश्यक है अन्यथा जीवन में सूनापन भर जाएगा। वह पारो को अकेला नहीं छोड़ सकेगा। सगर की कल्पना [illegible] वाली जंगली पहाड़ी पर फिसलने लगी···पारो ऐसी ही किसी पहाड़ी ढलान पर अपने साथियों के साथ घूम रही होगी।

मनुष्य जब सच्ची लगन से अपना [illegible] करने हेतु [illegible] होता है तब कोई भी चट्टान उसकी राह नहीं रोक सकती। [illegible] अनगिनत साथी पीछे छूट गए, दुनिया के तमाम [illegible] और वह पारो की खोज में निकल पड़ा। [illegible] पूर्व उसने पारो के लिए नये कपड़े खरीदे, [illegible] मूंगफली और गुड़ खरीदकर पोटली बांध ली। थोड़ी-सी मिठाई भी खरीदकर रख ली। सगर ने [illegible] ईश्वर ने उसकी सहायता की। [illegible] तो सगर ने नदी के जल के पास [illegible] देगा। उसके साथ दो [illegible] फड़कने लगे, उसकी [illegible]

उसने अपने कोमल स्वर्णिम वालों को माथे से समेटते हुए कहा—"कंडक्टर वस रोको, मुझे यहीं उतरना है।"

वस रुकी। सगर अपना सामान लेकर उतरा…वह पुल से ही चिल्लाने लगा—"पारो ऽ ऽ देख मैं आ गया।"

पारो ने दृष्टि उठाकर देखा—वहरोल की ओर वढ़ती हुई वस पुल पार कर रही थी—पुल से पत्थरों पर उतरता हुआ सगर—उसका भाई!

पारो की प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं…पारो चट्टानों पर भाग रही है, अपने भैया से मिलने के लिए…सगर भी भाग रहा है अपनी आत्मा के टुकड़े से मिलने के लिए। वहन-भाई का प्यार जाग उठा है। दूसरे ही क्षण पारो भैया के गले से लगी थी। फिर छिटककर उसने गर्दन उठाई। भैया को भुजदण्डों से पकड़ लिया और आक्रोश का वेग फूट पड़ा—उसके आंसू झर-झर वहने लगे। पारो ने प्रश्नों और आरोपों की झड़ी लगा दी—"कितने निष्ठुर हो तुम…तुमने यह भी नहीं सोचा कि तुम्हारी वहिन विल्कुल अकेली है इस दुनिया में? जिस घर में अधर्म की कमाई आती है उसमें मैं नहीं रह सकती…मैंने कल भी कोयला वीनकर रोटी कमाई थी, मैं आज भी मजदूरी करके जिन्दा रह सकती हूं। जव तक तुम राह पर नहीं आओगे मैं घर वापस नहीं जाऊंगी।"

सगर चट्टान की भांति अडिग खड़ा था। उसके नेत्र पथरा गए…उसके कोमल स्वर्णिम वालों को हवा के झोंके विखेर रहे थे। पारो सगर की खामोशी से घवरा गई। उसे पता है…भैया के मन में कोई वात घुटती है तव वह वोलता नहीं है। वह दांत भींचने लगता है। पारो को उत्तर चाहिए था…उसने सगर को झकझोरा—"तुम चुप क्यों हो? लगता है पाप की कमाई का जादू तुम्हारे सिर पर चढ़ चुका है…?"

"नहीं, नहीं पारो…मेरी आत्मा ने उस संसार को कभी स्वीकार नहीं किया था…।" सगर के ओंठ घृणा से कांप रहे थे—"मैंने वहुत घवराकर वह रास्ता अपनाया था, वहुत सोच-समझकर उस दुनिया को

प्रणाम किया है। अब मैं सदा-सदा के लिए वापस आ गया हूं। प्रशान्त भैया से जेल में मिला था। उन्होंने मुझे इस क्षेत्र में भेजा है तुम्हारा साथ देने के लिए।"

पारो के दोनों साथी अब तक यहां तक आ चुके थे। उन्होंने सगर का अन्तिम वाक्य सुना था। उन्होंने इतने दिनों के बाद पारो के पथराए होठों पर हंसी देखी थी। पारो को सहसा ही भैया की बात पर विश्वास नहीं हुआ। लेकिन उसे मानना पड़ा—"यह सच है। प्रशान्त से नहीं मिलता तो यहां तक कैसे पहुंचता?...भैया यहां आता ही क्यों? पारो के लिए इससे बड़ा सुख और कौनसा हो सकता था। आज का दिन सौभाग्यसूचक था। प्रातः प्रशान्त का संदेश मिला था फिर सगर की वापसी...पारो का मन उछलकर आकाश छूना चाहता है। सगर ने देखा पारो बहुत खुश है। वह अपना कन्धे का बोझ भी कम करना चाहता है। जानता है पारो को इमरती बहुत पसन्द है। मुस्कुराकर पूछता है—"पारो इमरती खाएगी?"

पारो को लगता है...भैया चिढ़ा रहा है। अनजान डगर की खोज में निकला व्यक्ति क्या इमरती लेकर आएगा? लेकिन भैया के कंधे पर दो बड़े-बड़े झोले लटक रहे हैं। पारो को लगा—उनसे इमरती की खुशबू फैल रही है। भैया, और दो झोले भरकर निकले? जरूर कोई बात है...लाया होगा मिठाइयां खूब भरकर। पारो को विश्वास हो गया तो बोली—"कई दिन से भरपेट रोटी नहीं खाई है। आज तू आया है तो जी भरके मिठाई खाऊंगी और अपने साथियों को खिलाऊंगी। देखो तुमसे मिलने की खुशी में भूल गई कि मेरे साथ भी कोई है। उनसे तुम्हारा परिचय करा दूं? देखो ये हैं प्रशान्त के बड़े पुराने साथी वीनू और यह हैं...हमारे नये साथी चन्दू। इन्हें इस क्षेत्र की पूरी जानकारी है। पहले भी चुनाव के संबंध में गांव-गांव घूम चुके हैं। फिर मानिनी बहन की भांति तुनककर सगर से बोली—"जब तक छीनूंगी नहीं... मिठाई नहीं निकालोगे। हम लोग यहीं नदी के किनारे बैठेंगे। इधर पानी के पास आ जाओ...।"

सगर ने झोला कन्धे से उतारा…। मिठाई के डिब्बे खोले…इमरती, बालूशाही, लड्डू और रसगुल्ले…सभी के चेहरों पर ललाई दौड़ गई। पिछले कितने दिनों से मोटी रोटी, साथ में कहीं चटनी-नमक, कहीं भटे का भुरता और कहीं कद्दू का साग। सगर ने एक इमरती उठाकर पारो को अपने हाथों से खिला दी। पारो ने भैया के मुंह में रसगुल्ला डाल दिया। बीनू और चन्दू ने सभी प्रकार की मिठाइयों पर हाथ साफ करना शुरू कर दिया। पारो खुश है…उसके साथी उसे खुश देखकर उससे ज्यादा खुश हैं…उन्होंने अभी तक पारो की मुस्कान भी नहीं देखी थी। पारो का चम्पई रंग आज और निखार पर है। उसके झील से शांत गहरे नेत्र आज बोलते-से प्रतीत होते हैं…उसने अपनी रेशमी कटि प्रदेश के भी नीचे लटकने वाली रेशमी-सी केशराशि को जतन से जूड़े में संभाल रखा था। हवा के झोंको ने चन्द लटें बिखेर दीं हैं। अन्य दिनों की भांति पारो को इस क्षण बिखरी हुई लटों को संवारने का होश नहीं है। पारो के रक्ताभ ओंठ, उसके साथियों ने सदा पपड़ाए हुए देखे थे—आज पारो हंस रही है, रगों में खून भाग रहा है, इसलिए ओठों की चमक लौट आई है। उसका सम्पूर्ण मुखमंडल खिल उठा है। बादलों की ढेर-ढेर पर्तें उतरती गईं…अन्ततः पूरे बादल साफ हो गए…चांद निकल आया। शांत, शीतल, निर्मल चांद की भांति दमकने लगा पारो का मुखमण्डल। तन्वंगी श्वेता सुन्दरी पारो ने अपना यह रूप कहां छुपाकर रखा था? उसकी कपोत ग्रीवा के पल्लू में लिपटी रहीं…उसने अपने अंग-प्रत्यंग को संजोकर छुपाए रखा। सुरक्षा की भावना सगर प्रदान करता है…सगर आज उसके सम्मुख है… उसका सुरक्षा कवच।

भैया के साथ पारो को थकान नहीं लगी…सारे दिन पैदल घूमी शिशिर की मादक धूप अच्छी लगती है लेकिन वर्षों से चलने की आदत छूटी हुई है। सूर्योदय के साथ उनका अभियान आरंभ हो जाता है… नये-नये गांव नये-नये व्यक्ति। प्रत्येक व्यक्ति से उसके मानसिक स्त के अनुसार जूझना पड़ता है। जो निर्धन है, उन्हें रोटी-कपड़े का अधि

कार समझाया जाता है। जो सम्पन्न है उनके जीवन-स्तर और सुवि-धाओं की बात की जाती है। शासन का कर्तव्य है कि सामान्य व्यक्ति के जीवन स्तर को उठाए···देश की अधिकांश जनता देहातों में रहती है, वहां के लिए बिजली होनी चाहिए···शिक्षा के अभाव में सर्वतोमुखी विकास सम्भव नहीं है। जन-स्वास्थ्य के लिए जलपूर्ति योजनाओं की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। गांव में बड़े अस्पताल होना चाहिए। ग्राम पंचायत और न्याय पंचायत का कार्य-क्षेत्र बढ़ाना चाहिए। क्षेत्र के सभी शासकीय कर्मचारियों को सरपंच के आधीन होना चाहिए···।

जहां जनता एकत्र हो जाती है वहां भाषण होता है। धीरे-धीरे पारो खुलने लगी है। उसके भाषण ओजपूर्ण होने लगे हैं। भीड़ भड़क उठती है···भीड़ उसका साथ देने को तैयार हो जाती है। हर क्षेत्र में नये कार्यकर्ता उत्पन्न हो रहे हैं। वह अपने-अपने क्षेत्र का दायित्व संभालने का वचन देते हैं।

जिस गांव में सूर्यास्त हुआ वहीं पड़ाव डाल दिया। कितनी बार सूरज उगा, कितनी बार सूरज ढला···। शाम होते-होते पारो अपने साथियों समेत धामोनी पहुंच गई। मजार के पीछे कुआ है। सब लोग मुंह-हाथ धोने लगे। पारो अम्मा के टपरे की ओर भागी। कितने दिन से सोच रही थी, धामोनी जाएगी, अम्मा से मिलेगी। अम्मा उसे पहचान लेगी···हां, हां क्यों नहीं पहचानेगी? फिर एक बार अम्मा के हाथ की सोंधी सोंधी ज्वार की रोटी चटनी के साथ खाएगी···इस बार तो उसके साथ बारह-पन्द्रह किलो आटा भी है। गांव वाले विदा करते हैं···साथ में आटा, नमक, चना, चावल जो कुछ होता है, बांध देते हैं। जंगल में भी पड़ाव डालने पड़े हैं···वहां आटा-नमक काम आया है।

अम्मा सामने खड़ी है। पारो भागती हुई आई है। अम्मा ने पारो को पहचाना···गले से लगा लिया। स्नेहवश आंसू टपक पड़े। किताब के पृष्ठ एक के बाद एक पलटने लगे···सागर के दिन···सागर में काटा समय। 'हां सगर भी आया है।"

"कहां है मेरा लाल?"

"अभी कुएं पर है...शायद मुंह धोकर आए...बस आता ही
गा।"

सगर आ गया। उसके साथी आ गए। सगर को देखकर अम्मा की
आंख जुड़ा गई। पारो साधिकार कहती है—"अम्मा हम सब तुम्हारे
यहां रोटी खाएंगे!"

अम्मा को संकोच होता है इतना आटा कहां से लाएगी?

पारो हंसती है—"किस सोच में पड़ गई अम्मा? देखा, इतना आटा
है...इसमें तीन-चार दिन हम लोग खा सकते हैं। अब तो यहीं डेरा
डालेंगे।...हम लोग देश का काम कर रहे हैं...अभी तुझे सब समझा-
ऊंगी। हम लोग सुबह सलमपुरा जाएंगे।"

"अब कहीं नहीं जाने दूंगी।"—अम्मा लाड़ जताने लगी।

"हां हां, कभी भी नहीं जाऊंगी...सुबह काम पर निकलूंगी...शाम
तक वापस आ जाऊंगी...हम सब लोग सुबह-सुबह निकल जाएंगे।"

"अच्छा बाबा, अभी तो बैठो...थोड़ा सुस्ता लो। मैं अभी चूल्हा
जलाती हूं...।"

पारो अन्दर टपरे में घुसती है। अम्मा का चौका पहले जैसा नही
है।...अब शायद हर दिन लीपा-पोती करती है। पारो और अम्म
भोजन की व्यवस्था में लग गईं।

सबने प्रेमपूर्वक भोजन किया। पारो और अम्मा के व्यवहार
सभी को ऐसा प्रतीत हुआ कि वह अपने घर में आ गए हों। रात को
बढ़ जाती है...पारो अम्मा के टपरे में सोएगी। बाकी लोग मजार
बरामदे में सोने के लिए चले गए।

पारो अम्मा के बगल में लेटी है, अम्मा को सागर में बिताए
दिनों की कहानी सुनाती है...कुछ संकोच होता है फिर वह कह
है—"हमारा एक साथी है...वही हमारा नेता है। वह जेल
अभी परसों उसका संदेश आया था—लिखा था जेल के कोठे व
हैं...कोई खिड़की नहीं है...ऊपर एक झरोखा है...पीछे पा
गन्दी गन्दी बदबू आती है। सीलन और बदबू ताजी हवा

दिन-दिन बढ़ती जाती है। शायद इसीलिए वह बीमार रहने लगा है। खाना बहुत खराब मिलता है।"

अम्मा का मन कांपने लगता है। घबराहट में बोल उठती है—"किस जुरम में पकड़ा गया था, कितने साल की कैद हुई है?"

"अम्मा उसने कोई जुरम नहीं किया, कोई मुकदमा नहीं चलाया गया—उसे कोई सजा नहीं सुनाई गई है।"

अम्मा को विश्वास नहीं होता—"ऐसी अन्धेरगर्दी कैसी? बिना जुर्म के, बिना मुकदमा चलाए जेल में बन्द कर देते हैं? आखिर क्यों?"

"ऐसा ही हो रहा है अम्मा। ऐसे लाखों लोग बन्द हैं। प्रशान्त उनमें से एक है। वह किसान और मजदूरों के लिए सरकार से लड़ता था। अब हम लड़ रहे हैं—हम भी किसी दिन जेल चले जाएंगे।"

अम्मा सोच में पड़ जाती है—उसके लिए यह एक जटिल पहेली है। उसे पता है लोग जब चक्कर में फंस जाते हैं तब बाबा के दरबार में आते हैं। इसी मजार पर दुआएं करते हैं। उसने कहा—"चल पारो, तुझे मजार के दर्शन करा लाऊं। बाबा सबका भला करेंगे। तेरे नेता के लिए मैं दुआ करूंगी···तू भी दुआ करना।"

पारो अम्मा के पीछे-पीछे चलती है। उसके सब साथी सो चुके हैं। सगर भी सोया पड़ा है। अम्मा अन्दर जाकर ढिबरी जलाती है—अंदर के चमगादड़ उड़ने लगते हैं—बीच में एक ढेर है मजार के नाम पर···। अम्मा बताती है यही बाबा की मजार है—यही लोग चादर चढ़ाते हैं। अम्मा अगरबत्ती सुलगाती है। पारो को देती है—पारो अम्मा की तरह रेत में अगरबत्ती गाड़ देती है। अम्मा घुटना मोड़कर इबादत के लिए बैठती है—पारो अम्मा की भांति सिर पर धोती डाल लेती है—उसी मुद्रा में बैठकर दोनों हाथ मजार की ओर फैलाती है। बाबा से प्रार्थना करती है—। अम्मा उठ गई—। उसने देखा पारो अभी भी बैठी है। उसकी बन्द आंखों के कोरों से आंसू चू रहे हैं। अम्मा ने उसके सिर पर हाथ फेरा 'बाबा उसकी जान की खैर करेंगे'···। उठ पारो···बाबा सबका भला करेंगे।"

पारो उठी। उसने आंसू पोंछ लिए। वह प्रशान्त के प्राणों की

रक्षा की भीख मांग रही थी—जब अम्मा ने उसके सिर पर हाथ रखा।

पारो अम्मा के साथ टपरे पर वापस आ गई। अन्दर से कम्बल निकाल लाई—उसे कन्धों पर लपेटती हुई बोली—"अम्मा तू सो जा मुझे अभी नींद नहीं आएगी। जंगल का अन्धकार अच्छा लगता है। मैं थोड़ी देर से सोऊंगी।" अम्मा सोने चली गई।

पारो ने सितारों-भरे आसमान को देखा। आसमान से एक तारा अभी-अभी टूटा है, पारो बुरी तरह से चौंकती है।

"क्यों सदा नीलगगन निहारती रहती हूं। इसका निस्सीम विस्तार, इसकी उनमादी ऊंचाई, इसके विविध रहस्यमय रंग शायद इसकी महानता के द्योतक हैं। हमारी कल्पना वाले देवता इस पर्दे के पीछे किसी स्वर्गलोक में रहते हैं। हमारे प्रकाश का स्रोत इसी विशाल शून्य से उगता है और इसीमें डूब जाता है। अंधेरे आंचल में अनगिनत नक्षत्र अपनी जगमगाहट से एक अत्यन्त ही रहस्यमय लोक की सृष्टि करते हैं—चांदनी के शहतीर इस मण्डप से गिरते हैं···। ओस और चांदी बरसाने वाला आसमान बांह पसारकर धरती को चूमने वाला आसमान, आग और पानी बरसाने वाला आसमान, धनी निर्धन, सुन्दर-असुन्दर प्रत्येक इन्सान के साथ समान व्यवहार करनेवाला नील गगन कभी किसी युग में बदनाम नहीं हुआ। इसलिए मैं बांहें पसारकर आशावान दृष्टि से शायद तुझे निहारती हूं—मौन स्वर में एक अज्ञात निवेदन करती हूं—अपने साये में इन्हें पलने दें···। मन के गीत जो मुझसे दूर हैं उनकी तू रक्षा करना······तुम्हारी छांह में एक दिन प्रशान्त आएगा··· जब तक आसमान हैं, मन का यह विश्वास टूट नहीं सकता।"

आधी रात बीत गई···"सितारों से जगमगाहट के नाम पर एक मादक गन्ध बरस रही है···सारा जंगल उस गन्ध में डूब रहा है, वृक्षों की ऊंची फुनगियों पर झिलमिल राख तैर रही है···वृक्षों के साये अंधेरे हैं···दूर-दूर तक अंधेरा और सन्नाटा है···अंधेरे की अपनी कोई आभा है जो भयावह भी है और सुन्दर भी···ऐसे ही अंधेरे का एक टुकड़ा उस दहलीज पर था···अंधेरे की उस अलौकिक आभा में प्रशान्त का प्रथम स्पर्श उसे मिला था···कितना सुन्दर था वह अन्ध-

[illegible] मुझे डर लगता है [illegible] है [illegible] मैंने तुम्हें सौंप दिया है।"

२

सगर ने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि उसका [illegible] इतनी शीघ्र परिवर्तित हो सकता है। हथकड़ी के पहियों की आवाज़ अब उसके कानों में नहीं गूंजती है। अपने साथियों की याद अब उसे नहीं आती है। उसके नये साथियों ने उसका मन जीत लिया है। [illegible] करके मन को शान्ति मिलती है। रात को अच्छी नींद आती है। सोते उसे पुलिस वालों की बूटों की आवाज़ नहीं सुनाई देती है। वह अब आहटों पर नहीं चौंकता है। उसकी नज़र [illegible] है। उसे गर्दन उठाने में अब डर नहीं लगता। पारो से नज़रें [illegible] की आवश्यकता नहीं पड़ती। शराब की याद नहीं आती—हां, शबनम की याद आती है।

शबनम उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी। पारो प्रशान्त से प्यार करती है, मगर इस बात को समझने लगा है। जिस प्रकार पारो का मन प्रशान्त को लेकर पागल रहता है···ठीक उसी प्रकार [illegible] उसके नाम की माला जपती होगी ?

कई दिन सोचने के बाद सगर ने शबनम को पत्र लिख दिया। शबनम की जीत पर उसे बधाई दी। फुर्सत मिलते ही मुरादाबाद आने का वचन दिया। पिछले कई दिनों से पारो को प्रशान्त का कोई पत्र नहीं मिला। पारो का मन कहता है, प्रशान्त बीमार है।

किसी दिशा से कोई समाचार नहीं मिल रहा है। इस केस का कार्य पूर्ण हो चुका है। अन्ततः पारो इसी निष्कर्ष पर पहुंची कि शायद

वापस जाना ही चाहिए। उसने फिर एक बार अम्मा से विदा ली। फिर मजार के सामने माथा टेका, घामोनी को प्रणाम किया और सागर के लिए अपने साथियों समेत चल दी।

कितने दिनों से मकान वन्द पड़ा था। मकान खोलकर कमरों की सफाई की।

रात के अंधेरे के साथ मन का अन्धकार गहन होता गया। कल तक प्रशान्त का कोई संदेश नहीं मिला तो वह जेल जाएगी। प्रशान्त का स्वास्थ्य ठीक होता तो अब तक भविष्य के कार्यक्रम की रूपरेखा आ गई होती।

सड़क वाली खिड़की खुली है। सगर अपने कमरे में सोया पड़ा है। सामने वाले लैम्प-पोस्ट का मटमैला प्रकाश खिड़की के रास्ते कमरे की दीवार पर फैला है—पड़ोसी की मरियल कुतिया बार-बार रिरयाती है…। सामने की घाटी पर जब कोई ऑटो रिक्शा या टैम्पो चढ़ता है…तो उसकी घरघराहट रात की खामोशी को थर्रा देती है। सामने वाली पहाड़ी पर ऊंचे-ऊंचे खम्भों पर दो लाल वल्व टिमटिमा रहे हैं। यहां से वायर-लैस मैसेज (तन्तु विहीन सन्देश) दूर-दूर तक भेजे जाते हैं। पारो प्रभु से प्रार्थना करती है—"उसके मन का संदेश ऐसे ही किसी अज्ञात माध्यम से प्रशान्त तक पहुंच जाए।" वह मात्र उसका कुशल-क्षेम जानने को आतुर है। प्रशान्त का स्वर उस तक क्यों नहीं पहुंच रहा है।

दबे पांवों की आहट प्रतीत होती है। हवा के साथ सूखे पत्ते सड़क पर उड़ते हैं—उनकी खड़खड़ाहट मे कोई पग-ध्वनि खो जाती है…। फिर निःशब्द वातावरण में कोई पग-ध्वनि, यह मात्र भ्रम नहीं है। शायद कोई उसके द्वार तक आकर रुक गया है।

पारो के हृदय का स्पन्दन तीव्र हो जाता है। अकुलाहट में स्वयं प्रश्न करती है—"कौन है?"

"वाहर कौन है?"

वाहर से एक दवी आवाज—"मैं प्रदीप।"

"प्रदीप ये तुम हो?"

"हां पारो, दरवाजा जल्दी खोलो।"

पारो को विश्वास नहीं होता। उठकर लाइट जलाती है। फिर इत्मीनान करके दरवाजा खोलती है। पूरी बांहों की गहरे नीले रंग की दोहरी जेब वाली कमीज देखकर पारो को विश्वास हो जाता है—बाहर प्रदीप है।

प्रदीप बुझा-बुझा-सा है। पारो के पास कुर्सी खींचकर बैठ जाता है। पारो का मन किसी आशंका से कांपता है—"क्या बात है प्रदीप, चुप क्यों हो ?" प्रदीप का कंठ रुंधा हुआ है—"भैया बहुत बीमार हैं।"

पारो की आत्मा की आवाज सही निकली है।

"क्या हुआ उन्हें···" पारो अपनी फूटती रुलाई को दबा लेती है। उसका स्वर भीगने लगता है।

"सब कुछ अप्रत्याशित रूप से घटा, कभी कल्पना भी नहीं की थी··· ऐसा भी हो सकता है।"

पारो धीरज छोड़ बैठती है, चीखना चाहती है, पुनः आवेग को संयम की डोर से बांधती है। इससे उसका स्वर कर्कश हो जाता है—"मुझमें सुनने का साहस है—बताओ क्या हुआ प्रशान्त को ?"

"कई दिनों से ज्वर था, पता कहां चलता है वहां··· किसकी तबियत कैसी है। जेलर भैया का भक्त है। उनके व्यक्तित्व और आचरण से सभी प्रभावित हैं वहां। उनके मौन में भयंकर आकर्षण है। जेलर की कृपा से उनके सैल में रात को प्रकाश दिखता था। पहले किसीको पता नहीं था भैया रात-रात भर क्या लिखते हैं ? ···सारी रात बैठे-बैठे कागज रंगा करते थे। उनके सैल से खांसने की आवाज सुनाई देती थी। धीरे-धीरे ज्वर बढ़ता गया। शनिवार की रात को उन्होंने खून की उल्टी की—उनकी कराह किसने सुनी होगी उस रात के अन्धकार में ? कब बेहोश हुए होंगे किसको पता ? सुबह सीखचों के बाहर बहता हुआ खून देखकर सैल खोली गई—।"

पारो का धैर्य का बांध टूट गया और वह बिखर पड़ी— अब कैसे हैं वे ?"

" भैया अभी जिन्दा हैं—घबराओ मत, तुमसे बिना मिले भगवान के यहां भी नहीं जा पाएंगे—सुबह सब ओर भाग दौड़ मच गई। सबके प्रिय थे न, बस इसीलिए।

" डॉक्टर आया, उसने परीक्षण किया। शायद आधी रात के लगभग बेहोश हुए थे—खून के उल्टी के बाद पूरी मोमबत्ती जल-जलकर गल गई थी—कागज बिखरे पड़े थे, खून में लिपटे हुए। सालों का पसीना पिया हुआ गन्दा बदबूदार कम्बल खोला गया तो उसकी तह में छुपे सैकड़ों लिखे हुए पृष्ठ······कोई उपन्यास लिख रहे हैं—शीर्षक है 'तलाश मंजिल की।' सारी रात जाग-जागकर वही लिखते थे। शायद अपनी जिन्दगी की कहानी।"

"फिर होश कब आया उन्हें ?"

"डॉक्टर आश्चर्य में डूबा था—नब्ज़ लगभग ग़ायब थी·· शरीर ठंडा था लेकिन जान बाकी थी। डॉक्टर का कहना था किसी महान् शक्ति ने उन्हें जीवित रक्खा था—यह शनिवार की रात की बात है··· इतवार दिन को दो बजे भैया को होश आया।"

पारो विस्फारित नेत्रों से शून्य की ओर ताकने लगी। उसे याद आया अम्मा के साथ बाबा के मजार पर वह शनिवार की रात को गई थी। उसी रात उसने प्रशान्त के प्राणों की भीख मांगी थी—अम्मा ने उसके सिर पर आशीर्वाद का हाथ रक्खा था—बाबा ने उसकी प्रार्थना सुन ली थी—प्रशान्त को नया जीवन मिला था—कितनी अंधेरी थी वह रात ? कितनी उसकी आत्मा भटकी थी···?

पारो और अधिक न सोच सकी। उसके नेत्र मुंद गए।

उसका मन प्रशान्त से मिलने के लिए छटपटाने लगा। अभी भी उनका स्वास्थ्य कभी भी धोखा दे सकता है। खून की उल्टी होना कोई साधारण बात नहीं है। निरन्तर ज्वर बना रहना, आधी-आधी रात तक खांसी आना और अन्त में खून की उल्टी होना—निश्चित ही उन्हें तपेदिक ने ग्रस लिया है। अंधेरी कोठरी, दूषित वातावरण, अनियमित और हानिकार भोजन ने सम्भवतः उनके रोग को उभार दिया होगा।

यदि इन्ही परिस्थितियों में उन्हें रहना पड़ा तो—जीवन के लिए घातक सिद्ध हो सकता है।

पारो प्रशान्त से मिलना चाहती है, उसने धुंधलाए से नेत्रों से नीली शर्ट के चमकदार बटनों को निहारते हुए कहा—"मुझे तुम्हारे भैया से मिलना है। मैं इसके लिए वांछित कार्यवाही करूंगी।"

"उनसे मिलने की अनुमति आपको नहीं मिल सकेगी। एक कोई रेणु जी हैं। उन्होंने भी अधिकारियों को आवेदन-पत्र दिया था, वह भैया से मिलना चाहती थी लेकिन उन्हें अनुमति नहीं दी गई।"

"आप लोग कैसे मिल पाते हैं?"

"हम कहां मिल पाते हैं? कौन मिलता है, कैसे मिलता है—कैसे उनके सन्देश हम तक आते हैं यह आप जानकर क्या करेंगी···?"

पारो समझती है यह सब इतना सरल नहीं है—लेकिन मन को कैसे समझाए? दुःखी होकर पूछती है—"हम लोगों के लिए नये निर्देश क्या हैं?"

"आशा की जाती है, जैसा कमेटी कहती मांगों को शीघ्र ही स्वीकार किया जाने वाला है। फिर सब कुछ सामान्य-सा प्रतीत होने लगेगा। चुनाव की तिथियां घोषित की जाएंगी। सारे देश में आम चुनाव होंगे··· यह घोषणा किसी दिन भी हो सकती है, इसी की प्रतीक्षा है।"

पारो मन ही मन उस दिन के लिए प्रार्थना करती है। प्रशान्त की रिहाई की कल्पना में डूब जाती है।

९०

[illegible]

रण नियत है। उसने अपने वकील से स्पष्ट शब्दों में कहा—"मैंने
राध किया है। मैं आरोप स्वीकार करना चाहता हूं।"

वकील ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा—"लेकिन क्यों ? अभियोजन
क्ष के अधिकांश साक्षीगण हम लोगों के परिचित व्यक्ति हैं। थोड़ा-सा
खर्च करने से शेष गवाहों को भी फोड़ा जा सकता है। जुर्म इकवाल
करने से सजा हो जाएगी ?

"मैंने जुर्म किया है इसलिए मुझे सजा मिलनी चाहिए।"

वकील साहव सगर की वात पर विश्वास नहीं कर सके। उनके
मुंशीजी ने वकील साहव को समझाया।

"हुजूर, सगर ने अपने गैंग से नाता तोड़ लिया है। अव तो इसने
भोपाल आना ही छोड़ दिया है, वाटू वतला रहा था…।"

"इसके चोरी करने न करने से मुझे क्या फर्क पड़ता है। मैं तो
अपने मुकदमे की वात कर रहा हूं। यह इकवाल करेगा, सजा इसे होगी।
वदनामी मेरी होगी…। फलां वकील के मुवक्किल को सजा हो गई।"
वकील साहव किसी भी तरह नहीं चाहते थे कि सगर जुर्म इकवाल करे

सगर किसी भी शर्त पर अपने निश्चय से डिगने को तैयार नहीं है
वकील साहव ने हर तरह से समझा-वुझाकर देख लिया।

अन्ततः मुंशी जी मतलव की वात पर आ गए—"देखिए जन
वकील साहव का पूरा मेहनताना आप अदा कर दीजिए। आप वे
अपना जुर्म इकवाल करें—आपको जेल नहीं जाने देंगे।"

"यह कैसे हो सकता है ?"

"यही होगा—आप मेहनताना निकालिए।"

"वाकी मेहनताना तो मुझे वैसे भी देना ही था…" यह रह
साहव का वाकी मेहनताना…" सगर ने जेव से नोट निकालक
पर रख दिए।

मुंशीजी ने नोटों की गड्डी गिनते हुए कहा—"देखिए ज
अपनी उम्र इक्कीस वर्ष से कम वतलाएंगे…।"

"यह तो सच भी है। मैंने अभी इक्कीस वर्ष पूरे भी कहां

"मेरे लिए हाँ या न लिए हाँ—आप न लिए आपकी खबर भी ली है।"

"जी।" सागर ने छोटा-सा उत्तर दिया।

इस बार मजीद मालूम हो सागर को समझाया—"आपकी परिवीक्षा अधिनियम के अधीन यह मामला है कि यदि आपका बर्ताव ठीक [illegible] तो आपको जमानत पर छोड़ा जा सकता है, आपको जेल की हवा नहीं खानी पड़ेगी।"

"लेकिन आपकी जमानत कौन देगा?"

"आपका कोई भी दोस्त…। आपको इस बात की जमानत देनी होगी कि आप आगे आने वाले दो तीन वर्ष तक किसी प्रकार का कोई अपराध नहीं करेंगे…"

"और यदि अपराध किया तो?"

"आपकी जमानत रद्द हो जाएगी। जमानतदार को जमानतराशि की रकम सरकार को जमा करानी पड़ेगी और अदालत आपको इसी जुर्म की सजा देने के लिए फिर से तलब कर सकेगी।"

"मुझे मंजूर है यह शर्त!" सागर ने विश्वास के साथ कहा।

"तो फिर जमानत का इन्तजाम करिए—सुबह अदालत में मुलाकात होगी।"

सागर [illegible] को मुजफ्फरपुर के [illegible] से आगाह करना चाहता है। [illegible] के जीवन का यह सबसे मधुर स्वप्न नहीं था—उसका कहीं अन्त था, [illegible] हाँ। नई पीढ़ी नई सुबह देख सके। इस बार में [illegible] फिर पाए। सागर के समान में [illegible] लेकिन यह सब भी परिस्थितियाँ जानती हैं। सागर [illegible] की जो कोई भी [illegible] होनी चाहिए। यह जानती है [illegible] —जैसे किसी दिन भी छोड़ा जा सकता है।

सागर ने [illegible] आशीर्वाद के साथ आवेदन-पत्र प्रस्तुत कर दिया है। एक माह के बाद भी यह [illegible] के साथ [illegible]

समक्ष प्रस्तुत हो जाएगा तब तक प्रशान्त भैया भी घर आ जाएंगे···।

सगर अपना यह निर्णय पारो को बताना चाहता है। मन में कितनी बातें संजोए वह घर पहुंचा···।

घर के सामने कितनी भीड़ है ? कार, तांगे, ऑटो रिक्शा, साइकिलें, सगर चौंकता है—"क्या बात हो सकती है···?"

घबराकर भीड़ के एक आदमी से पूछ बैठता है—"क्या बात है, यह भीड़ क्यों इकट्ठी है ?"

"अरे आपको नहीं पता, अपने प्रशान्त भैया जेल से छूटकर आए हैं। हम लोग उनके दर्शन को आए हैं—उनका अभिनन्दन करना चाहते हैं···लेकिन···।"

"लेकिन क्या ?"

"बेचारे बहुत बीमार हैं। एक-एक करके लोग दर्शन को जा रहे हैं। सीधे पुलिस अस्पताल से घर लाए गए हैं। कल शाम तक तो बेहोशी थी।"

सगर भीड़ चीरकर मकान के भीतर घुसता है। उसके ही कमरे में प्रशान्त भैया को लिटाया गया है। आसपास कितने लोग उन्हें घेरे खड़े हैं। सगर को देखकर प्रशान्त भैया आंखें खोलते हैं—अपना निर्जीव हाथ उठाकर सगर की ओर बढ़ाते हैं।

सगर अपने दोनों हाथों में उनका हाथ थाम लेता है—तपता हुआ हाथ···बुझे-बुझे नेत्र···अस्फुट स्वर—"तुम आ गए ?"

"हां भैया !" फिर पारो को देखकर पूछता है—"इतनी भीड़ क्यों रोक रखी है, भैया को विश्राम चाहिए, भीड़ नहीं···।"

"कुछ लोग बहुत दूर-दूर से प्रशान्त को देखने को आए हैं···।"

सगर कुछ सोचकर उठता है, बाहर द्वार तक जाता है, हाथ जोड़-कर भीड़ को सम्बोधित करता है—"भाइयो, प्रशान्त भैया आप सबसे मिलने के लिए बहुत व्याकुल हैं। आपको पता है वह कितने बीमार हैं। डॉक्टर ने उन्हें पूर्ण विश्राम करने की सलाह दी है। मेरी आप सबसे प्रार्थना है—भैया को आराम करने दें। उनकी तबियत ठीक होते

हो वह फिर आप सबके बीच आएंगे, आपका प्यार उनके जीवन की सबसे बड़ी प्रेरणा है।"

भीड़ छटने लगती है। डॉक्टर पीछे से आकर समर की पीठ थपथपाता है—"जो काम मैं इतनी देर में नहीं कर पाया था वह तुमने कर दिखाया है। हम सब लोग चलते हैं। प्रशान्त भैया को नींद की दवा दे दी है, हम लोग सुबह मिलेंगे।"

डाक्टर भी चले गए। प्रशान्त भैया के सभी साथी भी एक-एक करके चले गए। उनका अभिन्न मित्र रजनीश भर रह गया। सारो प्रशान्त के सिरहाने बैठी है। रजनीश प्रशान्त के पलंग पर उनका हाथ अपने हाथों में थामे बैठा है। समर कुर्सी पास में खींचकर बैठ जाता है। भीड़ छंट जाने का समाचार सुनकर प्रशान्त का मन कुछ हल्का हो रहा है।

मुस्कराने की चेष्टा करते हुए प्रशान्त ने कहा—"तुम सबको देखने के लिए जिन्दा रह गया। रजनीश! तुम कब वापस आए ?"

"बस कल। आपने सुना भैया वह लोग आपको चुनाव लड़ाने की तैयारी कर रहे हैं।"

"चुनाव लड़ने के लिए और भी बहुत से लोग हैं—मैं नहीं…।"

"लेकिन यह निर्णय लिया जा चुका है।"

"मैं विनम्रतापूर्वक प्रार्थना करूंगा, चुनाव लड़ना मेरा ध्येय नहीं है—मनुष्य मात्र के अधिकारों के लिए मेरा संघर्ष चलता रहेगा।"

"उन्हीं के अधिकारों की रक्षा के लिए आपको चुनाव लड़ना होगा। माहौल बहुत अच्छा है, जीत निश्चित है।

"मैंने तुम्हें बतलाया न, मैंने कभी चुनाव लड़ने की कल्पना भी नहीं की। जीत निश्चित है—यह मैं भी जानता हूं, लेकिन फिर भी नहीं। हम लोग सत्ता में आएंगे तो हमारे कुछ साथी भी गलतियां करेंगे—उस समय के लिए कुछ लोगों का रहना आवश्यक है—ताकि हम उनके खिलाफ भी आवाज उठा सकें और अभी तो यह भी नहीं पता है कि उस दिन तक यह शरीर साथ भी दे सकेगा ?"

समक्ष प्रस्तुत हो जाएगा तब तक प्रशान्त भैया भी घर आ जाएंगे...।

सगर अपना यह निर्णय पारो को बताना चाहता है। मन में कितनी बातें संजोए वह घर पहुंचा...।

घर के सामने कितनी भीड़ है ? कार, तांगे, ऑटो रिक्शा, साइकिलें, सगर चौंकता है—"क्या बात हो सकती है...?"

घबराकर भीड़ के एक आदमी से पूछ बैठता है—"क्या बात है, यह भीड़ क्यों इकट्ठी है ?"

"अरे आपको नहीं पता, अपने प्रशान्त भैया जेल से छूटकर आए हैं। हम लोग उनके दर्शन को आए हैं—उनका अभिनन्दन करना चाहते हैं...लेकिन...।"

"लेकिन क्या ?"

"बेचारे बहुत बीमार हैं। एक-एक करके लोग दर्शन को जा रहे हैं। सीधे पुलिस अस्पताल से घर लाए गए हैं। कल शाम तक तो बेहोशी थी।"

सगर भीड़ चीरकर मकान के भीतर घुसता है। उसके ही कमरे में प्रशान्त भैया को लिटाया गया है। आसपास कितने लोग उन्हें घेरे खड़े हैं। सगर को देखकर प्रशान्त भैया आंखें खोलते हैं—अपना निर्जीव हाथ उठाकर सगर की ओर बढ़ाते हैं।

सगर अपने दोनों हाथों में उनका हाथ थाम लेता है—तपता हुआ हाथ...बुझे-बुझे नेत्र...अस्फुट स्वर—"तुम आ गए ?"

"हां भैया !" फिर पारो को देखकर पूछता है—"इतनी भीड़ क्यों रोक रखी है, भैया को विश्राम चाहिए, भीड़ नहीं...।"

"कुछ लोग बहुत दूर-दूर से प्रशान्त को देखने को आए हैं...।"

सगर कुछ सोचकर उठता है, बाहर द्वार तक जाता है, हाथ जोड़कर भीड़ को सम्बोधित करता है—"भाइयो, प्रशान्त भैया आप सबसे मिलने के लिए बहुत व्याकुल हैं। आपको पता है वह कितने बीमार हैं। डॉक्टर ने उन्हें पूर्ण विश्राम करने की सलाह दी है। मेरी आप सबसे प्रार्थना है—भैया को आराम करने दें। उनकी तबियत ठीक होते

ही वह फिर आप सबके बीच आएंगे, आपका प्यार उनके जीवन की सबसे बड़ी प्रेरणा है।"

भीड़ छंटने लगती है। डॉक्टर पीछे से आकर मगर की पीठ थप-थपाता है—"जो काम मैं इतनी देर से नहीं कर पाया था वह तुमने कर दिखाया है। हम सब लोग चलते हैं। प्रशान्त भैया को नींद की दवा दे दी है, हम लोग सुबह मिलेंगे।"

डाक्टर भी चले गए। प्रशान्त भैया के सभी साथी भी एक-एक करके चले गए। उनका अभिन्न मित्र रजनीश भर रह गया। पारो प्रशान्त के सिरहाने बैठी है। रजनीश प्रशान्त के पलंग पर उनका हाथ अपने हाथों में थामे बैठा है। मगर कुर्सी पास में खींचकर बैठ जाता है। भीड़ छंट जाने का समाचार सुनकर प्रशान्त का मन कुछ हल्का हो रहा है।

मुस्कराने की चेष्टा करते हुए प्रशान्त ने कहा—"तुम सबको देखने के लिए जिन्दा रह गया। रजनीश! तुम कब वापस आए?"

"कल कल। आपने सुना भैया वह लोग आपको चुनाव लड़ाने की तैयारी कर रहे हैं।"

"चुनाव लड़ने के लिए और भी बहुत से लोग हैं—मैं नहीं…।"

"लेकिन यह निर्णय लिया जा चुका है।"

"मैं विनम्रतापूर्वक प्रार्थना करूंगा, चुनाव लड़ना मेरा ध्येय नहीं है—मनुष्य मात्र के अधिकारों के लिए मेरा संघर्ष चलता रहेगा।"

"उन्हीं के अधिकारों की रक्षा के लिए आपको चुनाव लड़ना होगा। माहौल बहुत अच्छा है, जीत निश्चित है।

"मैंने तुम्हें बतलाया न, मैंने कभी चुनाव लड़ने की कल्पना भी नहीं की। जीत निश्चित है—यह मैं भी जानता हूं, लेकिन फिर भी नहीं। हम लोग सत्ता में आएंगे तो हमारे कुछ साथी भी गल्तियां करेंगे—उस समय के लिए कुछ लोगों का रहना आवश्यक है—ताकि हम उनके खिलाफ भी आवाज उठा सकें और अभी तो यह भी नहीं पता है कि उस दिन तक यह शरीर साथ भी दे सकेगा ?"

"ऐसा मत कहिए ?"

"क्यों, अब इस शरीर में शेष ही क्या है ? किसी भी क्षण प्राण-पखेरू उड़ सकते हैं ?

पारो के नेत्रों की कोरों से दो अश्रु विन्दु लुढ़क आए...। पारो चाहती है प्रशान्त के सामने कोई समस्या न उठाई जाए—जब तक वह पूर्णरूप से स्वस्थ न हो। प्रार्थना के स्वर में रजनीश से कहती है—"अब इन्हें सो जाना चाहिए।"

"हां भैया, आप अब विश्राम करें, मैं चलूंगा।" रजनीश उठकर खड़ा हो गया।

रजनीश चला गया।

प्रशान्त को भी नींद आने लगी। आंखें नींद के बोझ से झुकने लगीं। पारो और सगर के चेहरे धुंधलाए-से प्रतीत होते हैं...निद्रा ने तप्त अधरों से उसकी पलकों को चूम लिया।

यात्रा की थकान के कारण सगर भी शीघ्र सो गया। पारो जाग रही है, नींद नहीं आती...बहुत देर तक प्रशान्त के सिरहाने खड़ी-खड़ी उसे निहारती रही...आंखों के चारों ओर कितने गहरे काले गड्ढे पड़ गए हैं। दाढ़ी फिर बढ़ आई है, सिर के बाल कितने उलझे हुए हैं। सिरहाने पड़ी आरामकुर्सी पर पारो पुनः बैठ जाती है...सुनहरे उलझे बालों को धीरे-धीरे सहलाती है...मानसिक संताप ने पारो को भी भीतर ही भीतर खोखला करना शुरू कर दिया है...।

आरामकुर्सी पर पड़े-पड़े पारो को भी कब नींद आ गई उसे पता ही नहीं चला।

कितनी रात बीत गई कुछ पता नहीं ? प्रशान्त खांस रहा है...नींद में पारो को लगता है। खांसी की आवाज बढ़ती जाती है...पारो चौंककर उठ बैठती है। प्रशान्त पलंग पर बैठा है, सीने को थामे हुए झुका चला जा रहा है खांसी के साथ...पारो उसकी पीठ सहलाती है...पानी का गिलास भरकर देती है। खांसते-खांसते उसकी आंखों से आंसू निकल आए हैं...पारो निःसंकोच भाव से अपने आंचल

के छोर से उसके आंसू पोंछती है···पानी पीने से उसे आराम मिलता है। तकियों के सहारे प्रशान्त बैठ जाता है। सांस का फूलना बंद होने लगता है—लेकिन प्रशान्त के चेहरे पर एक अजीब-सी घबराहट है··· एक काली परछाईं उसकी आंखों में नाचती है···एक दूर की आवाज उसके कानों से टकराती है। प्रशान्त घबराकर कहता है—"पारो··· यहां आओ, मेरे पास बैठो।"

पारो मन्त्रवत् उसके पास बैठ जाती है। प्रशान्त उसका हाथ अपने हाथों में थाम लेता है—"तुम्हें कुछ नहीं दे सका···एक उपन्यास लिखा है जेल में···। उसका नाम है 'तलाश मंजिल की'। इस शरीर का मुझे भरोसा नहीं है···कब···?"

पारो अपना हाथ उसके मुंह पर रख देती है। पारो फफक-फफक-कर रो रही है। लेकिन प्रशान्त अपने मन की बात पूरी कहना चाहता है। उसका हाथ मुंह से हटाता है और कहता है—"किसी भी सत्य को झुठलाया नहीं जा सकता···मैं न रहूं तो मेरा यह उपन्यास छपवा लेना··· मेरी इच्छा थी इसको पुस्तक के रूप में देखने की लेकिन···।"

पारो स्वयं को संयत करती है। उसके स्वर में तिलमिलाहट होते हुए भी एक अडिग विश्वास की झलक है—"पारो को प्रभु ने बहुत कुछ नहीं दिया है···लेकिन जो कुछ दिया है उसे कोई वापस नहीं ले सकेगा जब तक आप बीमार हैं···आप पर केवल मेरा अधिकार है। जब आप स्वस्थ हो जाएं तब फिर दुनिया के अनुशासन आपको बांध सकेंगे। अभी नहीं···बिल्कुल नहीं···। मैं, जिस दिन डॉक्टर अनुमति देगा आपको अपने साथ ले जाऊंगी—बाबा के मजार पर। उन्हीं की शरण में रहकर आप स्वस्थ होंगे। कल उपन्यास प्रेस में चला जाएगा। सगर मेहनत-मजदूरी करेगा···इसे छपवाएगा··· फिर सारी दुनिया आपके उपन्यास को पढ़ेगी···आपको कुछ भी नहीं हो सकता···आप मेरे लिए जिन्दा रहेंगे···आप दुनिया में तमाम दुखी आत्माओं के लिए जिन्दा रहेंगे।" पारो भावातिरेक से कांपने लगी और पुन: एक बार फूट-फूटकर रो पड़ी···।

प्रशान्त ने कांपते हाथों से पारो का सिर अपने वक्षस्थल पर साध लिया—उसका सिर प्यार से सहलाने लगा।

पारो का स्वर्ग यही है—यहीं उसे शान्ति मिलती है···उसकी आत्मा की प्यास बुझती है—कोई शक्ति प्रशान्त को उससे अलग नहीं कर सकती।

अंधेरे कमरे में प्रशान्त के सीने पर सिर रखे पारो की दृष्टि दूर-दूर तक भागने लगी···कोई बहुत विशाल आयोजन है, ऊंचे ऊंचे मण्डप··· असंख्य दीप और संगीत की मधुर स्वर-लहरी···

ऊंचे मंच पर बैठा व्यक्ति प्रशान्त है। लोग उसके गले में पुष्प मालाएं डाल रहे हैं···एक अन्य भव्य मूर्ति मंच पर है···प्रशान्त के उपन्यास के विमोचन का आयोजन है—देश भर से बड़े-बड़े साहित्यकार आए हैं··· प्रशान्त का गला पुष्पमालाओं से भर गया है।